होता हुआ वह तक्षशिला (ट्याशिलो) पहुँच गया। वहाँ का वि[illegible] वर्णन हुएनसांग ने इस प्रकार लिखा है।]

"त[illegible] शिला का राज्य लगभग २००० ली विस्तृत है राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। राजवंश नष्ट हो ग[illegible] बड़े-बड़े लोग बलपूर्वक अपनी सत्ता स्थापित करने में लगे हैं। पहले यह राज्य कपिशा के अधीन था परन्तु थोड़े [illegible] कश्मीर के अधिकार में हुआ है। यह देश उत्तम पैदाव[illegible] लिए प्रसिद्ध है। फसलें सब अच्छी होती हैं। नदियाँ [illegible]र[illegible] बहुत हैं, तथा फल-फूलों की भी अधिकता है। ज[illegible] वायु [illegible] नुकूल है। मनुष्य बली और साहसी हैं तथा [illegible] मानने लगे हैं। यद्यपि संघाराम बहुत हैं परन्तु [illegible] उजड़े और टूटे-फूटे हैं, जिनमें साधकों की संख्या भी अल्प [illegible] ये लोग महायान के अनुयायी हैं।

राजधानी के पश्चिमोत्तर में लगभग ७ ली की [illegible] नागराज इलापत्र का तालाब है। इस तालाब का घेरा १[illegible] कद[illegible] से अधिक नहीं है। पानी मीठा और उत्तम है। अनेक [illegible]कार [illegible] कमल के फूल अपने सुहावने रंग से किनारे की शो[illegible] बढ़ाते हैं। लोगों को जब कभी वृष्टि अथवा [illegible]काल होने की [illegible] श्यकता पड़ती है, तब ये अवश्य तालाब के किनारे श्रमण के पास जाते हैं और अपनी [illegible] निवेदन करने के [illegible]रान्त [illegible]याँ चटकाते हैं, जिससे मनोरथ पूरा होता है। यह प्रथा [illegible] समय [illegible] लेकर अब तक चली आती है।

नाग तालाब के दक्षिण-पूर्व ३० ली जाने पर हम दो पहाड़ों के मध्यवर्ती रास्ते में पहुँचे, जहाँ पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। य[illegible] [illegible]ग १०० फुट ऊँचा है। यही स्थान है, जहाँ के लिए शाक्य तथागत ने भविष्यद्वाणी की थी कि

कुछ दिनों बाद जब भगवान् मैत्रेय अवतार धारण करेंगे तब चार रत्नकोष भी प्रकट होंगे, जिनमें से यह उत्तम भूमि भी एक होगी। इतिहास से पता चलता है कि जब कभी भूचाल होता है अथवा आस-पास के पहाड़ हिलने लगते हैं, तब भी इस स्थान के चारों ओर १०० कदम तक पूर्ण निश्चलता रहती है। यदि मनुष्य मूर्खतावश इस स्थान को खोदने का उद्योग करते हैं तो पृथ्वी हिलने लगती है, और खोदने वाले सिर के बल गिरकर धराशायी हो जाते हैं। स्तूप के बग़ल में एक संघाराम उजाड़ दशा में है। बहुत समय से यह निर्जन है। एक भी साधक इसमें नहीं रहता। नगर के उत्तर १२ या १३ ली की दूरी पर एक स्तूप राजा अशोक का बनवाया हुआ है। धर्मोत्सव के दिन यह स्तूप चमकने लगता है, तथा देवता इस पर पुष्प बरसाते हैं, और स्वर्गीय गान की ध्वनि सुनाई पड़ती है। इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन काल में एक स्त्री भयानक कुष्टरोग से पीड़ित थी। वह स्त्री चुपचाप स्तूप के निकट आई और कुछ पूजा-अर्चा के उपरान्त अपने पापों की क्षमा माँगने लगी। उसने देखा कि स्तूप का खुला भाग विष्ठा और करकट से भरा हुआ था, इस कारण उसने उस मलिनता को हटा कर अच्छी तरह से स्थान को धोया और फूल तथा सुगन्धित वस्तुओं को छिड़ककर थोड़े-से कमल पुष्प भूमि पर फैला दिए। इस सेवा के प्रभाव से उसका दारुण कष्ट दूर हो गया और सम्पूर्ण शरीर से मनोहरता की झलक तथा कमल पुष्प की महक आने लगी। यही कारण है कि यह स्थान अत्यन्त सुगंधित है। प्राचीन समय में भगवान् तथागत इस स्थान पर निवास करके बोधिसत्व अवस्था का अभ्यास करते थे। उस समय वह एक बड़े प्रदेश के राजा थे जिसका नाम चन्द्रप्रभ था। बोधि-दशा को बहुत शीघ्र प्राप्त करने की उत्कण्ठा से उन्होंने अपने मस्तक को काट डाला था। यह भीषण कर्म

उन्होंने लगातार अपने एक हजार जन्मों तक किया था। इस स्तूप के निकट ही एक संघाराम है, जिसके चारों ओर की इमारत गिर गई है और घास-पात से आच्छादित है। भीतरी भाग में थोड़े से साधु निवास करते हैं। इस स्थान पर सौतान्त्रिक सम्प्रदायी कुमार लब्ध शास्त्री ने प्राचीन समय में कुछ ग्रन्थ निर्माण किए थे।"

वह साहसी यात्री तक्षशिला का अवलोकन कर भारत-भ्रमण के निमित्त आगे बढ़ा। तक्षशिला से कश्मीर जाने के लिए उसे बीहड़ दर्रों को पार करना पड़ा। कश्मीर राज्य में वह दो वर्ष तक अध्ययन करता रहा। उस समय कश्मीर का राजा महायान मत का अनुयायी था और धर्म-सम्बन्धी कार्यों में उत्साह सहित भाग लिया करता था। हुएनसांग ने अपने यात्रा-विवरण में कश्मीर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह स्थान अध्ययना-ध्यापन का केन्द्र था।

कश्मीर की यात्रा समाप्त करके हुएनसांग आगे बढ़ा। वह पुंछ, राजौरी और स्यालकोट आदि स्थानों में भ्रमण करता हु दस्युगणों से घिर गया। तस्करों ने उसे लूट लेना चाहा किन्तु इन सब विपत्तियों का सामना करता हुआ वह निरन्तर अग्रसर होता रहा। जालन्धर पहुंचकर उसने मथुरा का मार्ग पकड़ा और वहाँ से पुनः थानेसर लौट आया।

भारत के पश्चिमी भागों की यात्रा समाप्त करके हुएनसांग पूर्व की ओर बढ़ा। पांचाल (रुहेलखंड) होता हुआ सम्राट् हर्ष-वर्द्धन की राजधानी कन्नौज में पहुँचा। कन्नौज में कुछ दिन ठहरकर प्रयाग होते हुए, वह अयोध्या पहुँच गया। इस यात्रा में उसे भयंकर डाकुओं ने पकड़ लिया। ये डाकू दुर्गा के उपासक थे और प्रतिवर्ष नवरात्र में नर-बलि किया करते थे। हुएनसांग

का दिव्य शरीर देखकर वे डाकू अत्यन्त प्रसन्न हुए और बलि चढ़ाने का निश्चय कर उसे बाँधकर ले चले। हुएनसांग ने मुस्कराते हुए डाकुओं से कहा कि मेरा शरीर भगवती की बलि के लिए काम आएगा, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है किन्तु मैं चीन देश से इतनी दूर बोधिवृक्ष का दर्शन करने और धार्मिक ग्रन्थों की खोज के लिए आया हूँ। मुझे केवल इसी बात का दुःख है कि मैं देवी पर बलि होने के पूर्व अपना ध्येय पूर्ण न कर सका। हुएनसांग की वार्ता का इतना प्रभाव पड़ा कि डाकुओं में दो दल हो गए। एक दल उसे मुक्त कर देने के पक्ष में था किन्तु दूसरा वर्ग उसकी बलि चढ़ाना चाहता था। डाकुओं का सरदार दूसरे वर्ग में से था। वह हुएनसांग को उस वन प्रदेश में ले गया जहाँ पूजा की सामग्री प्रस्तुत थी और बलिदान की प्रतीक्षा की जा रही थी। डाकुओं ने हुएनसांग को एक खम्भे से बाँध दिया। खम्भे से बंधते समय भी हुएनसांग की आकृति पर प्रसन्नता झलक रही थी। वह तो तथागत के ध्यान में निमग्न था किन्तु एक डाकू खड्ग का प्रहार करने को सन्नद्ध खड़ा था। ठीक इसी समय इतना घोर झंझावात उठा कि अनेक वृक्ष क्षण में धराशायी हो गए। डाकुओं ने इसे परमात्मा का प्रकोप समझा और अपने अत्याचारों का फल मानकर हुएनसांग को मुक्त करना ही उचित समझा।

डाकुओं ने हुएनसांग से क्षमा याचना की और उसे गन्तव्य स्थान पर पहुँचा दिया। हुएनसांग कपिलवस्तु और कुशीनगर को देखता हुआ काशीराज्य में पहुँचा। सारनाथ में कुछ दिन तक ठहरकर वह वैशालीराज्य में प्रविष्ट हुआ। वैशाली नगर को देख कर नेपाल में गया। नेपाल की यात्रा समाप्त कर वह पुनः मगध की ओर लौट आया। पाटलिपुत्र से गया पहुँचकर उसने बोधि-

वृक्ष का दर्शन किया। वहां से राजगृह होता हुआ वह नालन्दा के महाविहार में पहुँच गया।

हुएनसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय का विस्तृत वर्णन लिखा है। उसके कथनानुसार इस विद्यापीठ में १५०० अध्यापक और दस सहस्र छात्र निवास करते थे। यहां के समस्त व्यय का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता था। इस विद्यापीठ में बौद्ध-ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद-वेदांग, उपवेद-दर्शन इत्यादि की भी शिक्षा का प्रबन्ध था। देश-विदेश से अनेक विद्वान् यहां विद्याध्ययन करने के लिए आते थे। जिस समय हुएनसांग इस विद्यापीठ में आया शीलभद्र आचार्यपद पर अधिष्ठित थे। हुएनसांग ने इसी आचार्य से शिक्षा ग्रहण की।

नालन्दा से हुएनसांग चंपा (भागलपुर) होता हुआ आसाम चला गया। वहाँ से ताम्रलुक होकर उड़ीसा पहुँच गया। वहाँ से कलिंग जाकर बरार और आंध्र होता हुआ दक्षिण-भारत की यात्रा के लिए चल पड़ा। हुएनसांग की इच्छा सिंहल जाने की भी थी, किन्तु राज्य-विप्लव के कारण वहां जाना उचित न समझकर वह महाराष्ट्र से होता हुआ भड़ौंच पहुँच गया। वहां से उज्जैन, सिन्ध और मुलतान होता हुआ वह पुनः नालन्दा महाविहार को लौट आया। इस स्थान पर तीन महीने रहकर उसने अपने देश को लौटना चाहा।

भारतीयों ने हुएनसांग को भारत में स्थायी रूप से बसने का बड़ा आग्रह किया किन्तु उसने अपने देश में धर्म-प्रचार की आवश्यकता बताकर मातृभूमि को लौटना ही श्रेयस्कर माना।

नालन्दा से विदा होकर हुएनसांग पाटलिपुत्र पहुँचा, जहां महाराज हर्षवर्द्धन शिलादित्य ठहरे हुए थे। महाराज अत्यन्त सत्कार के साथ हुएनसांग को अपनी राजधानी कन्नौज

ले गए। राजधानी में एक विशाल धर्म-महासभा का आयोजन किया गया था। इस महासभा में १८ देशों के ३००० श्रमण आये हुए थे। महासभा में हुएनसांग ने बौद्ध-धर्म की विशेषताओं पर जो भाषण दिया, वहां उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भारतीय विद्वानों ने की। राजा ने विविध उपहारों से हुएनसांग को सम्मानित करना चाहा किन्तु उसने किसी भी प्रकार का बहुमूल्य पदार्थ स्वीकार नहीं किया।

अब हुएनसांग ने जालंधर के राजा उधित के साथ सीमांत को प्रस्थान किया। वह जालन्धर में एक महीना ठहरा और तदुपरांत हाथी पर हस्त-लिखित पुस्तकें लादकर स्वदेश को चल पड़ा। ओहिंद के पास सिंधु को पारकर बामियाँ के दर्रे से कपिशा पहुँचा। वहाँ से काशगर, यारकन्द, खोतान होता हुआ ६४५ ई० में स्वदेश की राजधानी में प्रविष्ट हुआ।

हुएनसांग इस प्रकार १६ वर्ष तक भ्रमण करने के उपरान्त उस सम्राट् ताँग के राज्य में पहुँचा, जिसने प्रारम्भ में इस भिक्षु का चीन देश से बाहर जाना वर्जित कर दिया था। स्वदेश में पहुँचने पर जितना अभिनन्दन इस बौद्ध-भिक्षु का हुआ उतना कदाचित् किसी सम्राट् का भी न हुआ होगा।

हुएनसांग वास्तव में एक असाधारण यात्री था। आज से तेरह सौ वर्ष पूर्व, जब सर्वत्र घोर जंगलों में हिंसक जन्तुओं का राज्य था, यह भिक्षु एकाकी चीन से चलकर सहस्रों मील की लम्बी यात्रा करके भारत पहुँचा।

घोर वनों, दुर्गम घाटियों और प्रखर धार वाले नदी-नदों को पार करता हुआ यह साहसी यात्री अपनी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए नाना प्रकार के कष्ट झेलता रहा। कभी डाकुओं

ने लूटना चाहा तो कभी विकट हिंसक जन्तु इसके प्राणों के प्यासे बने।

भारत के साथ चीन का सम्बन्ध घनिष्ठ करने वाला यह बौद्ध-भिक्षु भोजपत्र पर लिखी हुई संस्कृत तथा प्राकृत की ६५७ पुस्तकें अपने साथ ले गया। बुद्ध तथा बोधिसत्वों की सुवर्ण, रजत, स्फटिक तथा चन्दन की अनेकों रम्य मूर्तियाँ, विविध चित्र, भगवान् बुद्ध के अवशेष इत्यादि चीन में पहुँच गए। इसका परिणाम यह हुआ कि चीन और भारत एक-दूसरे की संस्कृति से परिचित होते रहे।

अभ्यास

१. हुएनसांग कौन था? इसने भारत की यात्रा क्यों की?

२. इसकी यात्रा महत्वपूर्ण क्यों मानी गई?

३. हुएनसांग के समय में भारत की दशा कैसी थी? उस समय प्रमुख शिक्षा-केन्द्र कहाँ-कहाँ थे?

———

स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

आपका जन्म ई० १८८३ में राजस्थान के प्रसिद्ध राज्य जयपुर में हुआ। आपका वंश मूलतः काँगड़ा प्रान्त के गुलेर नामक स्थान से सम्बन्ध रखता है। आपके पूर्वज जयपुर चले गये थे। आप संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। गुलेरी जी ने जयपुर से 'समालोचक' पत्र अपने सम्पादकत्व में निकाला। इस पत्र के द्वारा ही हिन्दी के पाठक तथा साधक उनकी अनूठी शैली से परिचित हुए। श्री रामचन्द्र जी शुक्ल ने इनके बारे में अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है :

"यह बेधड़क कहा जा सकता है कि शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित वक्रता गुलेरी जी में मिलती है, वह और किसी लेखक में नहीं।"

आप कुछ समय अजमेर कालेज में अध्यापक रहे, और फिर वहाँ से हिन्दू-विश्वविद्यालय के ओरियंटल कालेज के प्रिंसिपल होकर आए। ई० १९२० में आपका देहान्त हुआ।

गुलेरी जी की यह कहानी पहली बार "सरस्वती" पत्रिका में ई० १९१५ में छपी थी। लोगों ने इसे उस समय भी "अद्वितीय" कहा था। यह विशेषण इस कहानी से आज तक जुड़ा हुआ है।

गुलेरी जी इसी कहानी से हिन्दी कथा-साहित्य में अमर हो गए। इसके अलावा उन्होंने केवल दो कहानियाँ और लिखीं।

स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

उसने कहा था

१

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली की मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले, कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उन की बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसा जी !', 'हटो भाई जी !' 'ठहरना भाई !' 'आने दो लालाजी !' 'हटो बाश्शा।' कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे-

वालों के जंगल में से राह बना लेते हैं। क्या मजाल है, कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उन की जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चेतावनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—'हट जा जीणे जोगिए ; हट जा करमाँ वालिए; हट जा पुताँ प्यारिए ; बच जा लम्मी उमराँ वालिए।' समष्टि में इन के अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है ? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुंथ रहा था जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता नहीं था।

"तेरे घर कहाँ है ?"

"मगरे में—और तेरे ?"

"माँझे में—यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतर सिंह की बैठक में, वह मेरे मामा होते हैं ?"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।"

इतने में दूकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने

मुसकरा कर पूछा "तेरी कुड़माई हो गयी ?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कह कर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहां, दूध वाले के यहा अकस्मात् दोनों मिल जाते हैं। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा-'तेरी कुड़माई हो गयी ?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिये पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली, "हाँ हो गयी।"

"कब ?"

"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू ?"

लड़की भाग गयी। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया; एक छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई खोयी, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले पर दूध उड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पायी, तब कहीं घर पहुँचा।

२

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है ? दिन-रात खन्दकों में बैठे बैठे हड्डियां अकड़ गयीं। लुधियाने से दस गुणा जाड़ा और मेंह, और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए हैं। गनीम कहीं दीखता नहीं। घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने-वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल जाती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहां दिन में पच्चीस ज़लज़ले

होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गयी तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहना सिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आजायगी, और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में—मखमल का-सा हरा घास है, फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मोर्चे का हुक्म मिल जाय, फिर सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। कायर पाजी कहीं के, संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अन्धेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक भी जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे, जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो..."

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा ?"

"सूबेदार जी सच है," लहनासिंह बोला, "पर करें क्या ? हड्डियों तक में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और

खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते भर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फैंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।"—यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बालटी में गदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।" इस पर सब खिल-खिला पड़े, और उदासी के बादल छट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बालटी भरकर उस के हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमां जमीन यहां लूँगा, और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होरां को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने-वाली फिरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँ वालों को शर्म नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका। कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, होठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे को हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो; आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी में मेरा सर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने मारने की बात लगायी है, मरें जर्मनी और तुरक।"

३

दो पहर रात गयी है। अन्धेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है।

बोधासिंह बिस्कुटों के तीन खाली टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछा कर और लहनासिंह के दो कम्बल और बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उस के मुँह से लगा कर पूछा, "कहो, कैसे हो?" पानी पी कर बोधा बोला, "कम्पनी छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दांत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए..."

"हाँ, याद आयी। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आयी है। विलायत से मेमें बुन-बुन कर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करे।" यों कहकर लहना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कह कर 'नहीं नहीं' करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरत्ता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आयी, "सूबेदार हजारासिंह।"

"कौन, लपटन साहब? हुकम हुजूर"—कहकर सूबेदार तन कर फौजी सलाम कर सामने हुआ।

"देखो इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर बाकी सब साथ लेकर उन से जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर

इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझा कर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये। और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला "लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहां उड़ गये और उनकी जगह कैदियों से कटे हुए बाल कहां से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पांच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह मुल्क पसन्द नहीं ?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहां कहां ? याद है, पार-साल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी ज़िले में शिकार करने गये थे।"

"हाँ, हाँ।"

"वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खान-सामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ?"

"बेशक, पाजी कहीं का—"

"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रजमंट की मैस में लगायेंगे।"

"हां, पर मैंने वह विलायत भेज दिया—"

"ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो दो फुट के तो होंगे?"

"हां, लहनासिंह, दो फुट चार इन्च के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कह कर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

"कौन, वज़ीरासिंह?"

"हां, क्यों लहना, क्या कयामत आ गयी। ज़रा तो आँख लगने दी होती?"

"होश में आओ। कयामत आयी और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आयी है।"

"क्या?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उन की वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इस का मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिग-रेट दिया है?"

"तो अब?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार हज़ारा कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उधर उन

पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खटके। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं..."

ऐसी तैसी हुकुम की। मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफ़सर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक सूरमा सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने ही लगा था कि बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक उठा कर लहनासिंह ने साहब को कुहनी पर तान कर दे मारी। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आह! 'मीन गाट्ट' (माऐ गाड) कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली, तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिज़ाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के ज़िले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आये। हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पांच लफ्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिये दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो, पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गांव में आया था। औरतों को बच्चे होने के तावीज़ बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था—जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायें तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो, सरकार का राज जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूंड दी थी और गांव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गांव में अब पैर रखा तो—"

साहब की जेब से पिस्तौल चली और लहना की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने

साहब की कपाल क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया, "क्या है?"

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया", और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें ले कर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कस कर बांधी। घाव मांस में ही थी। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने ही में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (—लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था, वह खड़ा था; और बाकी लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीरों पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों में वे......

अचानक आवाज़ आयी "वाह गुरु जी की फतह! वाह गुरु जी का खालसा। और धड़-धड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर होने लगे। ऐन मौके पर जर्मन चक्की के दो पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हज़ारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिखां दी फौज आयी। वाह गुरु जी दी फतह! वाह गुरु जी दा खालसा। सत श्री अकालपुरुख!" और लड़ाई खतम हो गयी। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिखों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल

गयी। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था, ऐसा चांद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वज़ीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया। सूबेदार ने लहनासिंह से सारा हाल सुना और कागज़ात पाकर वह उस की तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां चलीं, जो डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड हस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहां पहुँच जायेंगे, इसलिए मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह की जांघ में पट्टी बन्धवानी चाही। पर उसने कहकर टाल दिया कि मामूली घाव है, सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते ही नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहां पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन

मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियां आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियां चल पड़ीं थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—"तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वज़ीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं। समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहां आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्ज़ी वाले के यहाँ—हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उस ने कहा—'हाँ', कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू?" सुनते ही लहना सिंह को दुःख हुआ, क्रोध हुआ क्यों हुआ?...

"वज़ीरासिंह पानी पिला दे।"

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी ले कर ज़मीन के मुकद्दमे की पैरवी करने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जानी है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार घर में से निकल कर आया और बोला—"लहना, सूबेदारनी तुम को जानती है। वह बुलाती है। जा मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। "सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेंट के क्वाटरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जा कर "मत्था टेकना" कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना ?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वज़ीरा, पानी पिला।"

"उसने कहा था।..."

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे

को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ। मेरे भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है । पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार हुए, पर एक भी नहीं जिया ।' सूबेदारनी रोने लगी।' अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे, और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती जमादारनी ओबरी में चली गयी। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वज़ीरासिंह, पानी पिला ।"

उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वज़ीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है । आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, "कौन। कीरतसिंह ?"

"भैया, मुझे और ऊँचा कर ले अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।" वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"हां ठीक है। पानी पिला दे । बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना । जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था ।"

वज़ीरासिंह के आंसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—'फ्रांस और बेलजियम ६८वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिक्ख राइफ़ल्स जमादार लहनासिंह।'

अभ्यास

१. इस कहानी में क्या क्या खूबियां हैं ?

२. लहनासिंह कौन था, उसने बोधासिंह और सूबेदार को बचाने के लिए कैसा त्याग किया ?

३. लपटन साहब वाली घटना को अपने शब्दों में लिखो।

४. विशेष रूप से इस कथा का कौन-सा हिस्सा आपको अच्छा लगा ? क्यों ?

———

स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(जन्म ६ मई १८६१   मृत्यु १९४१ ई०)

स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर उन गिने चुने महापुरुषों में से हैं जिनकी कीर्ति विश्व के सभी देशों में फैली। सभी देशों में इनके साहित्य के अनुवाद हुए। इनके कारण भारत भूमि को भी मान मिला। श्री रवीन्द्र कवि भी थे तथा कहानीकार, उपन्यासकार, निबन्धकार और नाटककार भी। लेकिन विश्व में उनकी कीर्ति कवि रूप में ही फैली। उनकी प्रसिद्ध कविता-पुस्तक 'गीतांजलि' पर उन्हें १९१३ में विश्व का सब से बड़ा साहित्यिक पुरस्कार 'नोबल पुरस्कार' दिया गया।

कवि होने के साथ ही साथ आप बहुत बड़े शिक्षा-शास्त्री और सुधारक भी थे। बंगाल में 'शान्ति-निकेतन' और 'विश्वभारती' नाम की प्रसिद्ध संस्थाएँ उन्हीं के द्वारा स्थापित की गई थीं।

श्री रवीन्द्रनाथ ने शिक्षा, समाज तथा राजनीति सम्बन्धी बड़े उच्चकोटि के निबन्ध भी लिखे। उन्होंने कई बार विदेशों का भ्रमण किया।

प्रस्तुत लेख वस्तुत: एक पत्र है, जो उन्होंने अपनी रूस-यात्रा के दौरान मास्को से अक्तूबर १९३० ई० को वहाँ की शिक्षा-प्रणाली को देखकर लिखा था। राष्ट्र की उन्नति का आधार, सच्चे स्वावलम्बी नागरिक पैदा करने वाली शिक्षा ही होती है, यही भाव इस पत्र से व्यक्त होता है।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर

रूस की चिट्ठी

रूस घूम आया, अब अमेरिका की ओर जा रहा हूँ, इतने में तुम्हारी चिट्ठी मिली। रूस गया था उनकी शिक्षापद्धति देखने के लिए। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। आठ ही वर्ष के अन्दर शिक्षा के जोर से लोगों के मन का चेहरा बदल दिया है। जो मूक थे उन्हें भाषा मिल गई है; जो मूढ़ थे, उनके मन पर से पर्दा हट गया है; जो दुर्बल थे, उनमें आत्मशक्ति जागृत हो गई है; जो अपमान के नीचे दबे हुए थे, आज वे समाज की अन्ध-कोठरी में से निकलकर सबके साथ समान आसन के अधिकारी हो गये हैं। इतने ज्यादा आदमियों का इतनी तेज़ी से ऐसा भावान्तर हो जायगा, इस बात की कल्पना करना कठिन है। जमाने से सूखी पड़ी हुई नदी में शिक्षा की बाढ़ आई है—देखकर हृदय पुलकित हो जाता है। देश में इस छोर से लेकर उस छोर तक सर्वत्र जागृति है। इनकी एक नई आशा की

बीथिका मानो दिगन्त पार हो गई है—जीवन का वेग सर्वत्र पूरी मात्रा में मौजूद है।

ये तीन चीज़ों को लेकर अत्यन्त व्यस्त हैं। शिक्षा, कृषि और यन्त्र। इन तीन रास्तों से सम्पूर्ण जातियों को एक कर के बुद्धि, अन्न और कर्मशक्ति को सम्पूर्णता देने के लिए ये तपस्या कर रहे हैं। हमारे देश की तरह यहां के लोग भी कृषिजीवी हैं। परन्तु हमारे यहाँ की कृषि एक ओर से मूढ़ है और दूसरी ओर से असमर्थ—शिक्षा और शक्ति दोनों ही से वंचित। उसका एकमात्र क्षीण आश्रय है प्रथा बाप-दादों के जमाने के नौकर की तरह वह काम आती है कम और कतृत्व करती है ज्यादा। जो उसे मान कर चलेगा, वह आगे बढ़ ही नहीं सकता। और आगे बढ़ना ही है, क्योंकि सैंकड़ों वर्षों से वह लंगड़ाता हुआ चल रहा है।

शायद हमारे देश में किसी समय गोवर्धनधारी कृष्ण ही थे कृषि के देवता, ग्वालों के घर उनका विहार होता था; उनके भाई थे बलराम, हलधर। वह हल-अस्त्र ही मनुष्य के यन्त्रबल का प्रतिनिधि है। यन्त्र ने कृषि को बल दिया है। आज हमारे कृषि क्षेत्रों में कहीं भी बलराम के दर्शन नहीं होते—वे लज्जित हैं—जिस देश में उनके अस्त्र में तेज है, वे वहीं सागर-पार—चले गये हैं। रूस की कृषि ने बलराम को बुलाया है, देखते-देखते वहां के केदारखंड अखण्ड होते जा रहे हैं, उनके नवीन हल के स्पर्श से अहल्या-भूमि में प्राणों का संचार हो गया है।

एक बात हमें याद रखनी चाहिए, वह यह कि राम का ही हलयन्त्र-धारी रूप है बलराम।

सन् १९१६ में यहाँ जो क्रान्ति हुई थी, उसके पहले इस देश में फी-सदी निन्नानवें किसानों ने आधुनिक हलयन्त्र आँखों

से देखा भी नहीं था। वे तब हिन्दुस्तानी किसानों की तरह एकदम कमज़ोर—दुर्बल राम थे. भूखे थे, निःसहाय थे, मूक थे। आज देखते-देखते इनके खेतों में हज़ारों की संख्या में हलयन्त्र काम कर रहे हैं। पहले ये लोग थे बेचारे, गरीब, आज ये हैं बलराम।

केवल यन्त्रों से ही काम नहीं चल सकता, यन्त्री (संचालक) यदि मनुष्य न हुए। इनके खेत की कृषि मन की कृषि के साथ-ही-साथ बढ़ती जा रही है। यहाँ शिक्षा का काम और उसकी उन्नति सजीव है। मैं बराबर कहता आया हूँ कि शिक्षा को जीवन-यात्रा के साथ-ही-साथ चलाना चाहिए। उससे अलग कर लेने से वह भंडार की चीज़ बनी रहती है, खाकर पेट भरने की चीज़ नहीं बनती।

यह आकर देखा कि इन लोगों ने शिक्षा में प्राण भर दिये हैं। इसका कारण यह है कि इन्होंने घर-गिरस्ती की सीमा से स्कूल की सीमा को अलग नहीं रखा है। ये जो कुछ सिखाते हैं, वह पास करने या पण्डित बनाने के लिए नहीं, बल्कि सर्वतोभाव से मनुष्य बनाने के लिए ही सिखाते हैं। हमारे देश में विद्यालय हैं—परन्तु विद्या से बुद्धि बड़ी होती है, संवाद से शक्ति बड़ी होती है—पुस्तकों की पंक्तियों का बोझ हम पर ऐसा लद जाता है कि फिर हम में मन को ठीक रास्ते पर चलाने की शक्ति ही नहीं रह जाती। कितनी ही बार कोशिश की है अपने यहां के छात्रों से बातचीत करने की, पर देखा कि उनके मन में किसी तरह का जिज्ञासु-भाव ही नहीं है। जानने की इच्छा के साथ जानने का जो योग है, वह योग उनका टूट गया है। उन्होंने कभी जानना सीखा ही नहीं—शुरू से ही उन्हें पुराने नियमों के अनुसार शिक्षा दी जाती है, उसके बाद उस सीखी

हुई विद्या को दुहरा कर वे परीक्षा के 'मार्क' इकट्ठे करने में लग जाते हैं।

मुझे याद है, जब दक्षिण-अफ्रीका से लौट कर महात्मा जी के छात्र शान्ति-निकेतन आये थे, तब एक दिन उनमें से एक से मैंने पूछा था "हमारे छात्रों के साथ पारुल-वन देखने जाना चाहते हो ?" उसने कहा—"मालूम नहीं।" इस बारे में उसने अपने दलपति से पूछना चाहा। मैंने कहा—"पूछना पीछे, पहले यह बताओ कि तुम्हारी जाने की इच्छा है या नहीं ?" कहा—"मैं नहीं जानता।" कहने का मतलब यह कि वह छात्र स्वयं किसी विषय की कुछ इच्छा नहीं रखता—उसे चलाया जाता है, वह चलता है ; अपने आप वह कुछ सोचता ही नहीं।

उस तरह के मामूली विषयों में मन की इतनी जड़ता यद्यपि साधारणतः हमारे छात्रों में नहीं पाई जाती, किन्तु यह निश्चित है कि और भी ज़रा कठिन और विचारणीय विषय अगर छेड़ा जाय, तो उसके लिए इनका मन ज़रा भी तैयार न होगा। ये सिर्फ इसी बात की बाट देखा करते हैं कि हम उनके ऊपर रहकर क्या कहते हैं, उसी को सुनें। संसार में ऐसे निश्चेष्ट मन के समान निरुपाय मन और क्या हो सकता है।

यहाँ शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में अनेक तरह की परीक्षाएँ हो रही हैं, उनका विस्तृत विवरण फिर कभी लिखूँगा। शिक्षा-विधि के सम्बन्ध में रिपोर्ट और पुस्तकों से बहुत-कुछ जाना जा सकता है, किन्तु शिक्षा का चेहरा जो मनुष्य के भीतर प्रत्यक्ष दिखाई देता है, वही सबसे बढ़कर काम की चीज़ है। उस दिन उसे मैंने अपनी आंखों से देखा है। 'पायोनियर्स कम्यून' नाम से इस देश में जो आश्रम स्थापित हुए हैं, उन्हीं में से एक को देखने

गया था। हमारे शान्ति-निकेतन में जैसे व्रतीबालक और व्रती बालिकाएँ हैं, इनकी पायोनियर्स संस्थाएं लगभग उसी ढंग की हैं।

मकान में प्रवेश करते ही देखा कि मेरे स्वागत के लिए द्वार की सीढ़ियों पर, दोनों किनारे, बालक-बालिकाएँ पंक्तिवार खड़े हैं। भीतर घुसते ही वे मेरे चारों ओर सटकर बैठ गये, जैसे मैं उनका अपना ही कोई हूँ। एक बात याद रखना, ये सभी बिना माता-पिता के अनाथ हैं। वे जिस श्रेणी से आये हैं, एक दिन ऐसा था जब कि उस श्रेणी के लोग किसी से किसी तरह के सम्मान का दावा नहीं कर सकते थे, दरिद्रों की तरह बहुत नीच वृत्ति से अपनी गुज़र किया करते थे। इनके मुँह की ओर निहार कर देखा, तो मालूम हुआ, कि ये अनादर और असम्मान के कुहरे से ढके हुए चेहरे ही नहीं हैं। न संकोच है, न जड़ता। इसके विपरीत मालूम हुआ, मानो सभी के हृदय में एक प्रकार का प्रण है, सामने एक तरह का कार्यक्षेत्र है, मानो ये हमेशा तैयार से रहते हैं, किसी तरह से असावधानी या शिथिलता है ही नहीं।

स्वागत के उत्तर में मैंने भी कुछ कहा। उसके प्रसंग में उनमें से एक लड़के ने कहा—"पर-श्रमजीवी (Bourgeoisie) अपना व्यक्तिगत मुनाफा चाहते हैं, देश के ऐश्वर्य में सब आदमियों का समान स्वत्व रहे। इस विद्यालय में हम लोग उसी नीति पर चलते हैं!"

एक लड़की ने कहा—"हम अपने को स्वयं चलाती हैं, हम सब मिल कर सलाह करके काम करती हैं, जो सबके लिए अच्छा है, वही हमारे लिए ठीक है।"

एक दूसरे लड़के ने कहा—"हम ग़लती कर सकते हैं, यदि चाहें तो, जो हमसे बड़े हैं, उनकी सलाह लिया करते हैं।

ज़रूरत पड़ने पर छोटे लड़के-लड़कियाँ बड़े लड़के-लड़कियों से सलाह लेते हैं, और उन्हें सलाह की ज़रूरत हो तो वे शिक्षकों के पास जाते हैं। हमारे देश के शासनतन्त्र का यही विधान है। हम यहाँ उसी विधान की चर्चा और अनुशीलन किया करते हैं।"

इससे समझ सकते हो कि इनकी शिक्षा सिर्फ किताबों में ही सीमित नहीं है। अपने व्यवहार को, अपने चरित्र को इन्होंने एक बड़ी लोक-यात्रा के अनुकूल बना डाला है। वह विषय इनका एक प्रण बन गया है, और उस प्रण की रक्षा करने में ही ये अपना गौरव समझते हैं।

अपने यहाँ के लड़के-लड़कियों और शिक्षकों से मैंने बहुत बार कहा है कि लोकहित और स्वायत्तशासन के जिस दायित्व-बोध की आशा हम सम्पूर्ण देश में रखते हैं शान्तिनिकेतन की छोटी-सी सीमा के भीतर हम उसीका एक सम्पूर्ण रूप देखना चाहते हैं। वर्तमान व्यवस्था छात्रों और शिक्षकों की सम्मिलित स्वायत्तशासन की व्यवस्था होनी चाहिए—उस व्यवस्था से जब यहाँ के समस्त कार्य सुसम्पूर्ण होने लगेंगे, तब उतनी ही सीमा में हमारे सम्पूर्ण देश की समस्या हल हो सकती है। व्यक्तिगत इच्छा को सर्व-साधारण के हित के अनुकूल बना डालने की चर्चा राष्ट्रीय व्याख्यान-मंच पर खड़े होकर नहीं की जा सकती, उसके लिए खेत बनाये जाने चाहिएँ—वह खेत ही हमारा आश्रम होगा।

एक छोटा-सा दृष्टान्त तुम्हारे सामने रखता हूँ। खाने पीने की रुचि और अभ्यास के सम्बन्ध में बंगाल में जैसा कदाचार है, वैसा और कहीं भी नहीं। पाकशाला और पाकयन्त्र को हमने बहुत ही भारग्रस्त बना डाला है। इस विषय में संस्कार या सुधार करना बड़ा कठिन है। अपने समाज के चिरन्तन हित के

प्रति लक्ष्य रखकर हमारे छात्र और शिक्षक यदि पथ्य के विषय में अपनी रुचि को यथोचित रूप से नियन्त्रित करने का प्रण कर सकते, तो मैं जिसे शिक्षा कहता हूँ, वह शिक्षा सार्थक हो सकती। सात-तिया इक्कीस कण्ठस्थ करने को तो हम शिक्षा समझते हैं, और इस बात पर लक्ष्य न रखने को, कि इस विषय में भूल न करें, हम बड़ा भारी अपराध समझते हैं परन्तु वास्तव में देखा जाय तो जिस चीज़ को पेट में भरते हैं, उस विषय की शिक्षा की कम कीमत समझना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं। अपने दैनिक भोजन के सम्बन्ध में देश के सामने हमारा एक दायित्व है और वह बहुत बड़ा दायित्व है। अन्य समस्त उपलब्धियों के साथ-साथ इसकी याद रखना इम्तिहान के मार्क से कहीं बड़ा है।

मैंने उनसे पूछा—"कोई कुछ अपराध करे, तो उसके लिए क्या विधान है?"

एक लड़की ने कहा—"हमारा यहाँ किसी तरह का शासन नहीं है, क्योंकि हम अपनी सज़ा आप ही लिया करते हैं।"

मैंने कहा—"और ज़रा विस्तार से कहो। अगर कोई अपराध करे, तो क्या तुम लोग उसके लिए कोई खास सभा करते हो? या अपने में से किसी को पंच चुन लेते हो? और सज़ा देने के नियम हैं, तो कैसे हैं?"

एक लड़की ने जवाब दिया—"उसे विचार-सभा नहीं कहा जा सकता, हम लोग आपस में बातचीत करते हैं। किसी को अपराधी सिद्ध कर देना ही सज़ा है, इससे बढ़कर और सज़ा क्या होगी!"

एक लड़के ने कहा—"वह भी दुःखित होता है, हम भी दुःखित होते हैं, बस झगड़ा तय हुआ।"

मैंने कहा—"मान लो, कोई लड़का अगर सोचे कि उस पर झूठा दोषारोप हो रहा है, तुम लोगों के ऊपर और भी कहीं वह अपील कर सकता है ?"

लड़के ने कहा—"तब हम लोग वोट लेते हैं—अधिक मत से अगर निर्णय हो कि वह अपराधी है, तो उसपर फिर अपील नहीं चल सकती।"

मैंने कहा—"अपील न चले, यह दूसरी बात है, पर फिर भी अगर वह समझे कि अधिक मतों ने उसके प्रति अन्याय किया है, तो उसका कोई प्रतिकार हो सकता है या नहीं ?"

एक लड़की ने उठ कर कहा—"तब सम्भव है हम लोग अपने शिक्षकों के पास जाएँ और इस विषय में उनकी सलाह लें—पर ऐसी घटना कभो हुई नहीं।"

मैंने कहा—"जिस तपस्या में सभी कोई शामिल हैं, वह स्वयं ही अपराधों से तुम्हारी रक्षा करेगी।"

यह पूछने पर कि तुम्हारा कर्तव्य क्या है, उन्होंने कहा—"अन्य देश के लोग अपने काम के लिए धन चाहते हैं, सम्मान चाहते हैं; हम वैसा कुछ भी नहीं चाहते, हम सर्वसाधारण का हित चाहते हैं। हम गाँव वालों को शिक्षा देने के लिए देहातों में जाते हैं, और उन्हें समझाते हैं कि किस तरह सफ़ाई से रहा जाता है, सब काम बुद्धिपूर्वक किस तरह सरलता से किये जाते हैं, इत्यादि। अनेक अवसर ऐसे आते हैं, जब हमें स्वयं वहाँ रहना पड़ता है, इसके लिए हम नाटक खेलते हैं और देश की हालत उन्हें समझाते हैं।"

देश के नवोत्थान के लिए इन्हें बहुत रुपयों की ज़रूरत है, यूरोपीय बड़े-बाजारों में इनकी हुँडी नहीं चलती—नकद दाम देकर सौदा लेने के सिवा और कोई चारा ही नहीं। इसीलिए

मुँह का कौर देकर ये ज़रूरी चीज़ें खरीदते हैं। यहाँ का पैदा हुआ अनाज, पशु-मांस, अंडे, मक्खन—सब कुछ विदेश के बाज़ारों में बिकने जाता है। देश-भर के लोग उपवास के किनारे तक आ पहुँचे हैं,—अब भी डेढ़ वर्ष बाकी है। दूसरे देशों के महाजन इनसे खुश नहीं हैं। विदेशी इंजिनीयरों ने इनके बहुत से कल-कारखाने नष्ट भी कर दिये हैं। यहाँ का काम बहुत बड़ा और जटिल है, समय बहुत थोड़ा है। समय बढ़ाने का साहस नहीं होता, क्योंकि ये समस्त धनी-समाज की प्रतिकूलता के सामने खड़े हैं; जितनी जल्दी हो सके, अपने बूते पर धन कमाना इनके लिए बहुत ज़रूरी है। तीन वर्ष बीत चुके, अब भी दो वर्ष बाकी हैं।

ये लोग अपने देश-वासियों को सजीव समाचार-पत्रों द्वारा अर्थात् नृत्य-गीत और झण्डा उड़ाकर जता देना चाहते हैं कि देश की धन-शक्ति को यन्त्रवाहिनी करके धीरे-धीरे कितनी सफलता पाई है। देखने की ज़रूरत बहुत ज्यादा है जो जीवन-यात्रा के लिए अत्यन्त आवश्यक सामग्रियों से भी वंचित रहकर कष्ट से दिन बिता रहे हैं, उन्हें समझाने की ज़रूरत है कि शीघ्र ही इस कष्ट का अन्त होगा, और उसके बदले जो कुछ मिलेगा, उसका स्मरण करके उन्हें आनन्द के साथ, गौरव के साथ, कष्टों को गले लगाना चाहिए।

इसमें सन्तोष की बात यह है कि इस कार्य में कोई दल-विशेष नहीं, बल्कि सभी लोग एक साथ तपस्या में लगे हुए हैं। सजीव संवाद-पत्र, अन्य देशों के समाचार भी इसी ढंग से देश-भर में फैलाया करते हैं। पतिशर* में देहतत्व और मुक्तितत्व पर एक नाटक देखा था, उसकी याद उठ आई—ढंग एक ही है,

*बंगाल का एक स्थान, जहाँ कवि की जमीदारी है।

लक्ष्य भिन्न है। सोच रहा हूँ देश लौट कर शान्तिनिकेतन और सुरूल (श्रीनिकेतन) में इसी तरह के सजीव संवाद-पत्र चलाने की कोशिश करूँगा।

इनका दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है—सवेरे सात बजे उठते हैं, उसके बाद पन्द्रह मिनट व्यायाम करते हैं, फिर नित्यक्रिया और कलेवा। आठ बजे से क्लास बैठती है। एक बजे थोड़ी देर के लिए खाने और विश्राम करने की छुट्टी होती है। तीन बजे तक क्लास होती रहती है। सीखने के विषय हैं—इतिहास, भूगोल, गणित, प्राथमिक प्राकृत-विज्ञान, प्राथमिक रसायन, प्राथमिक जीव-विज्ञान, यन्त्र-विज्ञान, राष्ट्र-विज्ञान, समाज-विज्ञान, साहित्य, हाथ की कारीगरी, बढ़ई का काम, जिल्द साज़ी का काम, नये ढंग की खेती की मशीन आदि का व्यवहार, इत्यादि। रविवार नहीं है। पर पाँचवें दिन छुट्टी रहती है। तीन बजे बाद खास दिन की कार्य-सूचि के अनुसार पायोनियर लोग (अग्रगामियों का दल) कारखाने, अस्पताल गाँव आदि देखने जाया करते हैं।

देहातों में भ्रमण कराने की व्यवस्था की जाती है। कभी-कभी ये स्वयं अभिनय करते हैं और कभी-कभी थियेटर देखने भी जाते हैं। शाम का कार्यक्रम है—कहानियाँ पढ़ना, कहानियाँ सुनाना, तर्क करना, साहित्यिक और वैज्ञानिक सभाएँ करना। छुट्टी के दिन पायोनियर लोग अपने कपड़े धोते हैं, घर साफ़ करते हैं, मकान और मकान के चारों तरफ सफ़ाई करते हैं, क्लास के पाठ के अलावा अतिरिक्त पाठ पढ़ते हैं, घूमने जाते हैं। विद्यालय में भरती होने की उम्र है सात-आठ साल और विद्यालय छोड़ने की उम्र सोलह। इनका अध्ययन-काल हमारे देश की तरह लम्बी-लम्बी छुट्टियों से पोला नहीं किया गया, इसलिए थोड़े ही दिनों में ये बहुत ज्यादा पढ़ सकते हैं।

यहाँ के विद्यालयों का एक बड़ा भारी गुण यह है कि ये जो कुछ पढ़ते हैं, साथ-साथ उसकी तसवीर भी खींचते जाते हैं। इससे पाठ का विषय मन पर चित्रित हो जाता है। चित्रांकन में हाथ सध जाता है—और पढ़ने के साथ रूप-चित्रण का आनन्द भी मिल जाता है। यकायक ऐसा मालूम होने लगता है कि इन लोगों का ध्यान सिर्फ काम की ओर ही है, और गंवारों की तरह ये ललितकला की अवज्ञा करते हैं। परन्तु यह बात बिलकुल नहीं है। सम्राटों के ज़माने में बने हुए बड़े-बड़े नाट्य-मन्दिरों में उच्च श्रेणी के नाटक और 'ऑपेराओं के अभिनय के दिन' देर से टिकट मिलना मुशकिल हो जाता है। नाट्यभिनय-कला में इनके समान उस्ताद संसार में बहुत थोड़े ही हैं। प्राचीनकाल में अमीर-उमराव ही इनका आनन्द ले सकते थे—उस ज़माने में जिन के पैरों में जूते न थे, कपड़े थे तो फटे-पुराने मैले, जिन्हें भर-पेट खाने को न मिलता था, अहोरात्र जो मनुष्य और देवता सभी से डरा करते थे, परित्राण के लिए जो पुरोहित-पण्डों को घूस दिया करता थे, और मालिक के पैरों-तले धूल में सिर रखकर जो अपनी अवज्ञा आप करते थे, अब उन्हीं की भीड़ से थियेटरों में जगह नहीं मिलती।

मैं जिस दिन अभिनय देखने गया था, उस दिन खेल था टालसटाय का 'रिसरैक्शन'। मेरी समझ से यह नाटक सर्व-साधारण के लिए सहज-उपभोग्य नहीं हो सकता। परन्तु श्रोता-गण गम्भीर होकर बड़े ध्यान से चुपचाप सब सुन रहे थे। ऐंग्लो-सैक्सन किसान-मजूर श्रेणी के लोगों ने इस नाटक को रात के एक बजे तक ऐसी दिलचस्पी के साथ शान्त भाव से देखा होगा—यह बात कल्पना में नहीं आती, हमारे देश की तो बात ही छोड़ दो।

और एक उदाहरण देता हूँ। मास्को शहर में मेरी तस्वीरों की प्रदर्शनी हुई थी। यह तो कहना ही न होगा कि मेरी तस्वीरें विचित्र और दुनिया से न्यारी ही थीं। सिर्फ विदेशी हों सो नहीं, कहा जा सकता है कि वे किसी भी देश की नहीं हैं, मगर लोगों का भीड़-भब्भड़ काफी था। इन थोड़े से दिनों में पाँच हजार आदमी तस्वीरें देखने आये थे। और कोई चाहे कुछ कहे, कम से कम मैं तो इनकी रुचि की प्रशंसा बिना किये नहीं रह सकता।

रुचि की बात छोड़ दो, मान लो कि वह एक खोखला कौतूहल ही था, परन्तु यह कौतूहल ही तो जाग्रत चित्त का परिचय है। मुझे याद है, एक दिन अपने कुएँ के लिए मैंने अमेरिका से एक वायुचल-चक्र-यन्त्र मंगवाया था, जिससे कुएँ की गहरी नीचाई से पानी उठ आता था; परन्तु जब देखा कि लड़कों के मन की गहराई से ज़रा भी कौतूहल नहीं उठ रहा, तो मन में बड़ा ही धिक्कार आने लगा। हमारे यहाँ भी तो बिजली के कारखाने हैं, कितने लड़के जाते हैं वहाँ उत्सुकता मिटाने? कहने को तो वे भद्रश्रेणी के लड़के हैं। बुद्धि की जड़ता जहाँ है, वहीं कौतूहल दुर्बल है।

यहाँ स्कूल के लड़कों की बनाई हुई तस्वीरें हमें बहुत-सी मिली हैं, देखकर आश्चर्य होता है—वेशक वे चित्र हैं, किसी की नकल नहीं, उनकी अपनी उपज है। यहां निर्माण और सृष्टि दोनों की तरफ लक्ष्य देखकर बहुत सन्तुष्ट और निश्चित हुआ हूँ। जब से यहां आया हूँ, अपने देश की शिक्षा के बारे में मुझे बहुत सोचना पड़ा है। अपनी निःसहाय सामान्य शक्ति से इसमें से कुछ लेने और प्रयोग करने की कोशिश करूँगा। पर अब समय कहां है—सम्भव है, मेरे लिए पंचवार्षिक संकल्प भी पूरा

न हो। लगभग तीस वर्ष से जैसे अकेला ही प्रतिकूलता के विरुद्ध लग्घी से नाव ठेलता रहा हूँ—और भी दो-चार वर्ष उसी तरह ठेलना पड़े, पर बहुत आगे न बढ़ सकूँगा, मैं जानता हूँ—फिर भी किसी से फरियाद न करूँगा। आज अब समय नहीं रहा। आज ही रात की गाड़ी से जहाज के घाट की ओर रवाना होना है, कल समुद्र से पार होऊँगा।

२ अक्टूबर, १९३०

अभ्यास

१. 'रूस की चिट्ठी' से क्या अभिप्राय है ? यह चिट्ठी किसने किसको कब लिखी थी ?

२. इस चिट्ठी में लेखक ने रूस की शिक्षा के बारे में क्या लिखा है ? उसका सार अपने शब्दों में लिखिए।

३. 'पायोनियर्स कम्यून' से आप क्या समझे हैं। इसी तरह के एक कम्यून में श्री रवीन्द्र का बालकों से जो वार्तालाप हुआ उसका सार अपने शब्दों में लिखिए।

४. 'सजीव-समाचार-पत्र' किसे कहा गया है ? ऐसे समाचार-पत्र हमारे स्कूलों के विद्यार्थियों द्वारा क्यों नहीं चलाये जाते ? क्या यहाँ इनकी आवश्यकता नहीं ?

———

स्व० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

(जन्म १८९१ ई० मृत्यु १९५६ ई०)

श्री कौशिक का जन्म पंजाब के अम्बाला छावनी नामक नगर में हुआ। आपके पिता साधारण स्थिति के गृहस्थी थे। जब चार-पाँच वर्ष के हुए तो आपके एक दादा-भाई ने, जो निस्सन्तान थे आपको अपना दत्तक पुत्र बना लिया। ये नए धर्म-पिता कानपुर में वकालत करते थे। स्कूल में आपने मैट्रिक तक ही शिक्षा पाई। उनकी वास्तविक पढ़ाई घर पर ही हुई, जहाँ उन्होंने उर्दू, फारसी तथा हिन्दी-संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

हिन्दी में आपका लेखक के रूप में प्रवेश ई० १९११ में हुआ। आपकी पहली कहानी 'रक्षा-बन्धन' सरस्वती पत्रिका में ई० १९१२ को छपी। इसके बाद आपका लिखने का यह क्रम मृत्यु पर्यन्त बेटोक चलता रहा।

आप मु० प्रेमचन्द जी के समकालीन तथा सहयोगी ही नहीं थे, समकक्ष भी थे। इन्हें भी कथा-साहित्य के क्षेत्र में अपूर्व सफलता और कीर्ति मिली। इनकी कहानियाँ प्रायः सामाजिक होती हैं। ग्रामीण जीवन के चित्रण में तो आप बेजोड़ हैं। भाषा इनकी मु० प्रेमचन्द की भाषा के समान ही सरल और मुहावरेदार है। आप हिन्दी को पाँच कहानी-संग्रह तथा दो उपन्यास दे गए हैं। प्रस्तुत कथा में उन्होंने सभी तरह के वर्ग-भेदों के ऊपर रहने वाली सच्ची मानवता की एक अनोखी झलक प्रस्तुत की है।

स्व० विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

मनुष्यता का दण्ड

(मास्को से लगभग २०० मील पश्चिम की ओर वियाज्मा के निकट जंगल में घने वृक्षों के मध्य एक बड़ी-सी झोंपड़ी बनी थी। इस झोंपड़ी में एक छोटा-सा रूसी परिवार रहता था। इस परिवार में केवल तीन प्राणी थे। एक प्रौढ़ वयस्क पुरुष, जिसकी वयस ४५ वर्ष के लगभग थी। शरीर का हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ठ, उसकी पत्नी जो लगभग उसकी समवयस्क ही थी, और इनकी एक कन्या जिसकी वयस २० वर्ष के लगभग होगी ये दोनों स्त्रियाँ भी खूब तन्दुरुस्त थीं। पुरुष का नाम पाल लारेंज्की, स्त्री का नाम स्टेला तथा कन्या का नाम पोला था।

दिसम्बर की सन्ध्या थी। अस्तासन्न सूर्य की सुनहरी किरणें आकाश में फैले हुए कुहरे का भेदन करने का विफल प्रयत्न कर रही थीं। झोंपड़ी में केवल तीन कमरे थे। एक

बैठने-उठने के काम आता था, एक स्त्रियों के सोने के लिए दूसरे में पाल का बिस्तर था। झोंपड़ी के पिछवाड़े एक 'शेड' था, जो भोजन पकाने तथा खाद्य-सामग्री रखने के काम आता था।

पाल अपनी पत्नी तथा कन्या सहित अँगीठी के सामने बैठा हुआ था। (झोंपड़ी में अन्धेरा हो गया था। अतः स्टेला अपनी कन्या से बोली—'पोला चिराग जला दे। उफ! आज बड़ी सर्दी है—बाहर बर्फ गिरने लगी होगी।"

पोला ने चर्बी का दीपक जलाया और झोंपड़ी का द्वार खोल कर बाहर की ओर झांका; तत्पश्चात द्वार बन्द करके कहा—"बड़ा कुहरा है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता!"

यह कहकर वह पुनः अपनी कुर्सी पर जा बैठी।

स्टेला जम्हाई लेती हुई बोली—"न जाने इस प्रलयकारी युद्ध से कब छुटकारा मिलेगा।"

पाल अपना पाइप मुँह से निकाल कर बोला—"इतने ही दिनों में घबरा गई? अभी तो असली युद्ध आरम्भ भी नहीं हुआ।"

"एक तो हम लोग ऐसी जगह हैं जहाँ हफ्तों कुछ समाचार ही नहीं मिलता—इससे जी और ऊबता है।"

"लेकिन साथ ही हम लोग सुरक्षित भी हैं।"

पोला बोल उठी—"मेरा चित्त तो चाहता है कि मैं मास्को चली जाऊँ। वहाँ युद्ध के काम में कुछ सहायता करूँ।"

"तो क्या तू समझती है कि यहाँ हम लोग बेकार ही पड़े हैं? हम लोग यहाँ रह कर जो कर रहे हैं, वह भी युद्ध की सहायता ही है।"

"हां, परन्तु जीवन बड़ा निरुत्तेजक है। कोई हलचल नहीं, कोई गर्मा-गर्मी नहीं। मौसम भी ठण्डा और हमारा जीवन भी ठण्डा।"

"कुछ भी हो—हमें अपना कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए।" पाल ने गम्भीरतापूर्वक कहा और पाइप मुँह में लगा कर विचार-मग्न हो गया। तीनों मौन बैठे हुए थे। तीनों की विचारधारा अलग-अलग थी। पोला मास्को का कल्पित चित्र खींचकर उसमें विचरण कर रही थी और पाल सोच रहा था रूस और उसके भविष्य की बात।

सहसा द्वार खट-खटाने का शब्द हुआ। पाल चौंक पड़ा। उसने पाइप मुँह से निकाल कर द्वार की ओर कान लगाया। कुछ क्षण पश्चात फिर वही शब्द!

स्टेला बोली—"इस समय कौन आया?"

पोला उठती हुई बोली—"देखूँ?"

परन्तु पाल ने हाथ उठाकर कहा—"ठहरो!"

पोला खड़ी रही। फिर वही शब्द, परन्तु इस बार कुछ ज़ोर से।

पाल उठ खड़ा हुआ। उसने खूंटी पर लटकी हुई पेटी में से अपने पिस्तौल को निकाल कर हाथ में ले लिया। तत्पश्चात् द्वार के निकट पहुंचा। द्वार के पास ही एक छोटी खिड़की थी। खिड़की खोलकर बाहर झांकते हुए कहा—

"कौन?"

"एक आपद्ग्रस्त मनुष्य! कृपा करके जल्दी द्वार खोल दो।"

"पर तुम हो कौन?"

"इस समय मैं केवल एक मनुष्य हूँ और मनुष्यता के नाते आप से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे शरण दीजिए। मुझे मौत के मुख से बचा लीजिए।"

"तुम तो जर्मन मालूम होते हो।"

"इसके पहले मैं कुछ भी था, परन्तु इस समय केवल एक मनुष्य हूँ और आपका दयापात्र। आपका शरणागत।"

"तुम्हारे पास कोई अस्त्र है?"

"हां, परन्तु मैं उन्हें फेंक देता हूँ। यह लीजिए—यह बन्दूक गई और यह पिस्तौल। बस अब मेरे पास कुछ नहीं है।"

पाल ने बन्दूक और पिस्तौल फेंके जाने का शब्द सुना।

स्टेला बोल उठी—"यदि जर्मन है तो मरने दो, द्वार मत खोलना।"

पाल ने पत्नी को उत्तर न दिया। वह द्वार खोलने लगा।

स्टेला चिल्लाई—"पाल क्या करते हो? दगाबाज जर्मन पर विश्वास करते हो?"

"वह इस समय जर्मन नहीं है—केवल एक मनुष्य है।"

यह कहते हुए पाल ने द्वार खोला—आगन्तुक झटपट भीतर आ गया। पाल ने द्वार बन्द कर लिया। जर्मन सर्दी के मारे कांप रहा था। पाल ने अंगीठी के निकट कुर्सी रख दी और जर्मन से कहा—"आओ।"

जर्मन लड़खड़ाता हुआ कुर्सी पर आ बैठा। स्टेला घृणा से मुंह बनाकर अपनी कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई और पोला को संकेत करके साथ लिए दूसरे कमरे में चली गई।

जर्मन स्थिर दृष्टि से अंगीठी की अग्नि को देख रहा था।

दस मिनट तक दोनों मौन बैठे रहे। पाल अपना पाइप मुँह में दाबे, जर्मन के मुख को ध्यानपूर्वक देख रहा था।

"उफ! किस बला की सर्दी है। लोग कहते हैं कि नरक में आग ही आग है। यदि नरक में इतनी सर्दी हो तो भी मुझे आश्चर्य न होगा। यह सर्दी आग से कम जान-लेवा नहीं है।"

"इस समय कहाँ से आ रहे हो?" पाल ने पूछा।

"मैं, मैं मौत के मुँह से बचकर आ रहा हूँ। दोपहर की लड़ाई में हमारी बटालियन के प्रायः सब आदमी या तो मारे गए या पकड़ लिए गए। मैं किसी प्रकार भाग निकला। सोचा था अपने पिछले मोर्चे पर चला जाऊँगा। पर आज इस कदर कुहरा रहा कि मैं रास्ता न देख सका और भटक कर इधर आ गया! उफ! यदि आप न मिलते तो रात में यहीं-कहीं सर्दी से ऐंठ जाता।"

कुछ गर्मी आ जाने पर जर्मन ने पहले अपने चमड़े के दस्ताने उतार डाले, तत्पश्चात् रोंएदार चमड़े का बड़ा कोट भी उतार दिया। कोट उतार कर वह इधर-उधर देखने लगा। पाल ने उसका तात्पर्य समझकर एक ओर संकेत किया। यहाँ दीवार पर किसी पशु का सिर लगा हुआ था—जिसके दो बड़े-बड़े सींग थे। जर्मन ने उठकर एक सींग पर अपना कोट टांगा और पुनः अपने स्थान पर आकर कहा—

"क्या मैं अपने आश्रयदाता का नाम पूछ सकता हूँ?"

"पाल लारेंज्की," पाल ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया। जर्मन ने अपने कोट की जेब से पाइप निकाला और रबड़ की थैली! रबड़ की थैली में से तम्बाकू निकालकर पाइप में भरते हुए वह बोला—"मेरा नाम फ्रेडरिक है।"

अंगीठी की आग से एक पतली लकड़ी के द्वारा पाइप सुलगाकर उसने पूछा—"आप क्या यहाँ अकेले ही रहते हैं?"

"हाँ हर फ्रेडरिक।"

"क्यों? क्षमा कीजियेगा—मुझे ऐसा प्रश्न नहीं करना चाहिए, परन्तु उत्सुकता वश...।"

"यह युद्धकाल है हर फ्रेडरिक।" पाल ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया। फ्रेडरिक बच्चों की भांति हंसता हुआ बोला—

"ठीक बात है।" फिर मुँह बनाकर बोला—"युद्ध बड़ी बुरी चीज़ है। युद्ध में मनुष्य मनुष्य नहीं रहता!"

पाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ क्षण तक दोनों मौन रहे। पाल ने अपने पाइप की राख झाड़ते हुए कहा, "हम लोगों के भोजन का समय हो गया, आप भी खा लीजिए!"

"वाह वा! मुझे भूख भी ज़ोर की लगी है। बिस्कुट और सूखी रोटी खाते-खाते नाक में दम हो गया।"

पाल ने पुकारा—"स्टेला।"

स्टेला कमरे के द्वार पर आकर बोली—"क्या है?"

"खाना लाओ, यह हमारे मेहमान भी खायेंगे।"

फ्रेडरिक हँसता हुआ बोला—"मैं बहुत भूखा हूँ बहन, इसका ध्यान रखना।"

स्टेला फ्रेडरिक को सशंक नेत्रों से देखती हुई चली गई।

भोजन से निवृत्त होकर उठते हुए फ्रेडरिक बोला—"उफ ओह! बाद मुद्दत के स्वादिष्ट भोजन मिला। आप विश्वास कीजिए कामरेड पाल, युद्ध-क्षेत्र में केवल पेट भरा जाता

है। जिसे भोजन कहते हैं, उसकी तो वहाँ गन्ध भी नहीं होती। अब तो युद्ध बन्द हो जाता तो अच्छा था।"

दोनों पुनः अंगीठी के पास जा बैठे और दोनों ने अपने-अपने पाइप सुलगा लिए। पाल बोला—"बिना रूस पर विजय प्राप्त किए आप लोग यह युद्ध समाप्त कैसे कर देंगे?"

"कामरेड पाल! मुझे तो आशा नहीं है। कि हम लोग कभी रूस पर विजय प्राप्त कर सकेंगे। रूसियों के हृदय में देश प्रेम है, देश के लिए प्राण देने की भावना है और सब से बड़ी बात यह है कि रूसी युद्ध-कला जानते हैं।"

फ्रैडरिक ने यह बात इतने भोलेपन के साथ कही कि पाल को उसमें खुशामद नहीं वरन शुद्ध-हृदयता दिखाई दी।

पाल बोला—"परन्तु क्या तुम्हारा भगवान् हिटलर भी ऐसा ही सोचता है?"

"क्या जाने! परन्तु यदि अभी नहीं सोचता तो उसे आगे चलकर सोचना पड़ेगा। भई, मेरा विचार तो ऐसा ही है, परन्तु होगा क्या, यह कौन जाने। क्यों कामरेड, भविष्य की बात कौन बता सकता है?"

"आप लोगों से क्या कहा जाता है।"

"बस यही कि लड़े जाओ, विजय निकट है। हर हिटलर के तो हमें कभी-कभी दूर से ही दर्शन हो जाते हैं। हमें तो अपने निकट के अफ़सर से ही काम रहता है। केवल उसकी आज्ञा-पालन करना ही हमारा धर्म है जैसा कि प्रत्येक सैनिक का हुआ करता है।"

"हर हिटलर के लिए जर्मनी का बच्चा-बच्चा अपने प्राण देने के लिए सदैव तैयार रहता है—क्यों न?"

"हाँ, यह बात ठीक है। हम लोगों के अन्दर यही भावना भरी जाती है कि हिटलर की आज्ञा-पालन करने में ही हमारे लिए सब कुछ है, परन्तु कामरेड पाल! मनुष्य तो मनुष्य ही रहेगा—पशु नहीं हो सकता। मनुष्य के पास मस्तिष्क है, बुद्धि है, हृदय है, इनसे तो यह कुछ-न-कुछ काम अवश्य ही लेगा—नहीं लेगा?"

"लेना तो चाहिए। परन्तु जहाँ तक मैंने सुना है और देखा है, जर्मन सैनिक पशुवत् व्यवहार करते हैं।"

"देखिए कामरेड पाल! युद्ध में जो-कुछ होता है उसका उत्तरदायित्व सैनिक पर नहीं वरन् सैनिकों का संचालन करने वाले अफ़सरों पर होता है। इस पर आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या तुम लोगों के अफ़सर पशु हैं? मैं कहूँगा नहीं। वे पशु नहीं, वे केवल युद्धान्ध हो गए हैं। मैं आप से इस समय ऐसी बातें कर रहा हूँ, यह केवल इसलिए कि मैं इस समय युद्ध-भावना-शून्य हो गया हूँ। अन्यथा जब मैं युद्ध-भावना से पूर्ण होता हूँ तो मेरा हृदय भी दयाशून्य हो जाता है। युद्ध चीज़ ही ऐसी है।"

भोजन के साथ ली हुई शराब ने पाल की गम्भीरता को कम कर दिया था। वह बोला—"बेशक! हर फ्रेडरिक! युद्ध बहुत बुरी चीज़ है, परन्तु इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व तुम्हारे विधाता हिटलर पर है।"

"मैं राजनीति की पहेलियाँ हल कर सकता, इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि इसका उत्तरदायित्व किस पर है—हाँ इतना जानता हूँ कि रूस पर पहल हम लोगों ने की है और शायद युद्ध बन्द करने में भी पहल हमारी ही ओर से होगी।"

अन्तिम वाक्य फ्रेडरिक ने दाँत निकालकर ऐसे मसखरे-पन के साथ कहा कि पाल भी मुस्कराने लगा। पाल बोला—"जर्मन होने के नाते आपके विचार बड़े स्वतन्त्र हैं।"

"सो तो इस बात को मेरे साथी सैनिक भी जानते हैं। मैं बात साफ़ ही कहता हूँ। बड़ी हँसी होती रहती है। कुछ लोग बुरा भी मानते हैं, पर मुझे इसकी परवाह नहीं। हाँ अफ़सरों के सामने तो मैं अपने विचार प्रकट नहीं करता। हमारे अफ़सर बड़े बेढब होते हैं। अपने प्रतिकूल वे एक शब्द भी नहीं सुनना चाहते।"

पाल फ्रेडरिक के कोट की बाँह पर का चिन्ह देखकर बोला—"आप तो सार्जेण्ट मालूम होते हैं।"

"हाँ, मैं सार्जेण्ट हूँ कामरेड!"

सहसा फ्रेडरिक की आँख निद्रा-भार से बन्द होने लगी। यह देखकर पाल बोला—"आपको नींद आ रही है—सोना चाहिए।"

"मैं बहुत थका हुआ हूँ कामरेड!" फ्रेडरिक ने आँखें खोलकर कहा।

पाल उठकर भीतर वाले कमरे में चला गया। स्टेला लेटी हुई थी, पोला अपने बिस्तर पर बैठी हुई विचार मग्न थी।

स्टेला पाल को देखते ही बोली—"क्या यह भेड़िया रात में यहीं रहेगा?"

"और नहीं तो कहाँ जाएगा?"

"भेड़िये को घर में रखोगे?"

"इस समय वह भेड़िया नहीं रहा, इस समय वह केवल एक मनुष्य है।"

"जर्मन और मनुष्य ?"

"क्या तुम मुझे इतना बेवकूफ समझती हो कि मैं आदमी और भेड़िये की पहचान भी नहीं कर सकता ?"

स्टेला मौन हो गई। पाल ने कहा—"मैं यह कहने आया हूँ कि इस कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लेना। और यह पिस्तौल धरा है। अब तो तुम्हें इतमीनान रहेगा ?"

और बाहर कमरे में जो हमारी बन्दूकें, पिस्तौल और कारतूप की पेटी है वे सब क्या वहीं रहेंगे ?"

पोला बोल उठी—"खाली एक पिस्तौल से क्या होगा ?" सब अस्त्र तो बाहर वाले कमरे में हैं और उसी कमरे के पास वह सोएगा।"

"मैं भी तो वहीं रहूँगा।"

"तो क्या तुम रात-भर पहरा दोगे ?"

"इतनी दूर तक सोचने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा मैं जाता हूँ।"

यह कहकर पाल शीघ्रतापूर्वक बाहर आ गया। उसने देखा, फ्रेडरिक बैठा ऊँघ रहा है। उसने जाकर अपने बिस्तर के बग़ल में ही फ्रेडरिक का बिस्तर लगा दिया और तत्पश्चात फ्रेडरिक से कहा—"आपका बिस्तर तैयार है, हर फ्रेडरिक !"

फ्रेडरिक चौंककर उठ खड़ा हुआ।

प्रात:काल सबसे पहले पाल जागा। उसने देखा कि फ्रेडरिक गहरी निद्रा में है। उसने उठकर अँगीठी की आग को और तेज़ किया और स्त्रियों के कमरे के द्वार पर जाकर उसे

खटखटाया। पोला ने द्वार खोला। पाल अन्दर गया। स्टेला अपने बिस्तर पर बैठी हुई थी।

पाल बोला—"स्टेला काफी बना लो, शायद हमारा मेहमान नाश्ता करके जाना चाहे।"

"तो क्या उसे जाने दोगे?"

"हाँ, क्यों? यहीं रखने का विचार है? कल तो उस को रात में ही निकालने के लिए तैयार थी।"

"मेरा मतलब यह है कि उसे गिरफ्तार करके अपने फौजी अधिकारियों को सौंप दो। यहाँ से जाकर कहीं वह हमारे स्थान का पता............।"

"फिर वही अविश्वास। विश्वास करना सीखो स्टेला, जर्मन भी आखिर मनुष्य ही हैं।"

"इसी मनुष्यता का परिचय दे रहे हैं।"

"अरे तो भी सब एकसे थोड़े ही हैं। इतनों में से कुछ तो ऐसे निकलेंगे जिनमें अब भी कुछ मनुष्यता बाकी होगी। और मेरे ख़याल में उन थोड़े आदमियों में से यह भी एक है। खैर, उस पर नहीं मुझ पर विश्वास करो। मैंने धूप में बाल सफ़ेद नहीं किये हैं। जल्दी नाश्ता तैयार करो।"

पाल पुनः बाहर आ गया, और अपना पाइप सुलगाकर अँगीठी के पास बैठ गया।

थोड़ी देर में फ्रेडरिक ने करवट बदली।

पाल ने पुकारा—"हर फ्रेडरिक सवेरा हो गया।" फ्रेडरिक ने मुँह पर से कम्बल हटाकर पहले इधर-उधर देखा, तत्पश्चात् "ओ", कह उठ बैठा। आँखें मलता हुआ वह बोला—"ओह खूब सोया।"

"थके हुए जो थे।" पाल ने मुस्करा कर कहा।

फ्रेडरिक अपने जूते चढ़ाते हुए बोला—"बहुत थका था।"

फ्रेडरिक भी पाल के पास आ बैठा। थोड़ी देर में नाश्ता तैयार हो गया। दोनों ने नाश्ता किया। इसके पश्चात् दोनों फिर अंगीठी के पास बैठ कर बातें करने लगे।

एक घंटा और व्यतीत हो जाने पर पाल ने फ्रेडरिक से पूछा—"अब आपके क्या इरादे हैं ?"

"जैसी तुम्हारी आज्ञा हो।"

"क्या मतलब ?"

"इस समय कायदे से मैं तुम्हारा कैदी हूँ।"

"खैर इस बात को छोड़ो ! मैंने कैदी की हैसियत से तुम्हें यहाँ नहीं रखा, बल्कि एक मनुष्य की हैसियत से एक मनुष्य को आश्रय दिया है।"

"तो यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने पिछले मोर्चे पर चला जाऊँ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"यदि यह बात है तो मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ। आपने एक सच्चे मनुष्य जैसा व्यवहार किया है।"

"और मुझे आशा है कि तुम भी ऐसा ही करोगे।" पाल ने कहा।

"निःसन्देह प्राण भी चले जाएँ, तब भी उसके विपरीत नहीं करूँगा।"

"तो आप जा सकते हैं। परन्तु आपके अस्त्र जो आपने बाहर फेंक दिये थे बर्फ में दब गए होंगे।"

"कोई चिन्ता नहीं, ऐसे ही चला जाऊँगा। यदि केवल एक पिस्तौल होता तो काफी था।"

"एक पिस्तौल! खैर, एक पिस्तौल मैं आपको दे दूँगा।"

"बस काफी है और थोड़ी दूर तक रास्ता........"

"यह भी बता दूँगा। और कुछ?"

"बस।"

कुछ देर में फ्रेडरिक चलने के लिए तैयार हो गया। पाल ने एक भरा हुआ पिस्तौल दिया और थोड़ा खाने को। फ्रेडरिक बोला—"यह क्या?"

"कुछ खाने को है। शाम तक वहाँ पहुँच पाओगे!"

"धन्यवाद! आप बड़े दयालु हैं। अच्छा।"

"चलो मैं तुम्हें रास्ता बता दूँ।"

पाल ने अपनी बन्दूक ले ली और जाने के लिए तैयार हो गया। चलते समय फ्रेडरिक स्टेला से बोला—"बहन, क्षमा करना! मेरे कारण तुम्हें कुछ असुविधा हुई।"

स्टेला मुस्करा कर बोली—"नहीं असुविधा की क्या बात थी।"

पाल और फ्रेडरिक दोनों चले। लगभग डेढ़ घण्टा चलने के बाद मुख्य सड़क दिखाई पड़ी। फ्रेडरिक बोला—"बस, अब आप लौट जाइये, मैं चला जाऊँगा।" ये दोनों थोड़ी दूर आगे बढ़े होंगे कि सामने से जर्मन मोटर-फौज का एक दस्ता

आता दिखाई पड़ा। फ्रेडरिक जल्दी से बोला—"कामरेड पाल! आप जल्दी निकल जाइये, छिपते हुए जाइयेगा।"

पाल शीघ्रतापूर्वक वृक्षों की आड़ लेकर लौट पड़ा। फ्रेडरिक आगे बढ़ा। दस मिनट में फौज का दस्ता उसके करीब आकर रुका। उसमें से आठ-दस सैनिक बन्दूकें लिये उतरे। उनके साथ एक अफ़सर भी था। अफ़सर के हाथ में दूरबीन थी। अफसर ने पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"फ्रेडरिक!"

"किस बटालियन के हो?"

फ्रेडरिक ने नाम बताया। अफ़सर ने उसका नम्बर पूछा। वह भी फ्रेडरिक ने बता दिया।

"तुम्हारे साथ दूसरा कौन आदमी था?"

"कोई तो नहीं?"

"था कैसे नहीं? मैंने स्वयं दूरबीन से देखा। एक रूसी बन्दूक लिये हुए था।"

फ्रेडरिक मौन रहा।

अफ़सर साथ के सैनिकों से बोला—"देखो, उसे तलाश करो, अभी दूर न गया होगा।"

दस सैनिकों की एक टुकड़ी अपनी बन्दूकें सम्भालकर दौड़ पड़ी। अफ़सर फ्रेडरिक से बोला—"तुम्हें गिरफ्तार किया जाता है।"

यह कहकर उसने पास खड़े हुए सैनिकों से संकेत किया। उन्होंने आगे बढ़कर उसे हिरासत में कर लिया। एक ने

उसका पिस्तौल ले लिया। देखकर सैनिक बोला·····यह तो रूसी पिस्तौल है।"

अफ़सर चौंककर बोला—"देखूँ!"

पिस्तौल हाथ में लेकर अफ़सर बोला—"यह तो निःसन्देह रूसी है। तुमने इसे कहाँ पाया?"

फ्रेडरिक बोला—"एक रूसी सैनिक की लाश से ले लिया था।"

अफ़सर ने पिस्तौल की मेग्ज़ीन खोलकर देखी। तत्पश्चात् कहा—

"बिलकुल भरा हुआ है। एक भी फायर नहीं किया गया। हूँ, मेरा ख्याल ठीक निकला। उसका यह प्रमाण है। ठीक बताओ, तुम्हारे साथ कौन था?"

फ्रेडरिक बोला—"यदि आप ठीक जानना चाहते हो तो वह था जिसने मुझे मृत्यु के मुख से बचाया—जिसने मुझ पर विश्वास करके मुझे अपने घर में आश्रय दिया। वह एक मनुष्य था। उसने मुझे मनुष्य समझकर मेरे साथ मनुष्यता का व्यवहार किया।"

"ओह! मैं व्याख्यान नहीं सुनना चाहता। वह कौन है? उसका घर कहाँ है?" अफ़सर ने कड़ककर कहा।

फ्रेडरिक मौन रहा।

"जल्दी बोलो!"

फ्रेडरिक निरुत्तर था।

"नहीं बताओगे?"

"कदापि नहीं।" फ्रेडरिक ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तब तो यह खुली बग़ावत है।"

इसी समय सैनिकों की टुकड़ी लौट आई। उसमें से एक ने अफ़सर को सेल्यूट करके कहा—"वह तो नहीं मिला। आगे घना जंगल है, उसमें छिप गया होगा।"

"और वह हम लोगों को देख गया है।" अफ़सर ने पैर पटककर क्रोध से दाँत पीसते हुए कहा, "फ्रेडरिक, तुम्हें दो मिनट का समय दिया जाता है। उसके बाद एक सैनिक होने के नाते तुम स्वयं जानते हो।"

दो मिनट व्यतीत हो गए। अफ़सर सैनिकों से कड़ककर बोला—

"फायरिंग स्क्वाड—पाँच आदमी!"

पाँच सैनिक अलग निकलकर एक कतार में खड़े हो गए। अफ़सर फ्रेडरिक से बोला—"फ्रेडरिक! तुम्हें फ्यूहरर तथा नात्सी सरकार के विरुद्ध बग़ावत करने के अपराध में मृत्यु-दण्ड दिया जाता है। तुम्हें कुछ कहना है?"

फ्रेडरिक दृढ़तापूर्वक बोला—"मुझे कुछ नहीं कहना है।" अफ़सर ने सैनिकों को संकेत किया। दो सैनिकों ने आगे बढ़कर फ्रेडरिक का ऊपरी कोट उतार लिया। तत्पश्चात् उसके दोनों हाथ पीछे बाँध दिये। अफ़सर ने पुनः फ्रेडरिक से पूछा—"तुम्हें किसी को कोई सन्देश देना है?" फ्रेडरिक कुछ क्षण तक सोचकर बोला—'हाँ, मेरी माता से कह देना कि फ्रेडरिक को उसकी मनुष्यता के लिए मृत्यु-दण्ड दिया गया।"

अफ़सर दाँत पीसकर बोला—"इसकी आँखों पर पट्टी बाँधो।"

एक सैनिक ने रूमाल फ्रेडरिक की आँखों पर बाँध दिया।

अफ़सर ने कहा—"ले जाओ। ५० कदम......।"

दो सैनिक फ्रेडरिक को ५० कदम की दूरी पर ले गए और उसे फायरिंग स्क्वाड की ओर मुँह करके खड़ा कर दिया और स्वयं उससे कुछ हटकर खड़े हो गए। अफ़सर बोला—"तैयार !"

पाँच सैनिकों ने अपनी बन्दूकें सीधी करके फ्रेडरिक की ओर निशाना साधा। अफ़सर बोला—"एक-दो-तीन !" पाँच बन्दूकें एक साथ छुटीं और फ्रेडरिक की लाश भूमि पर लोटने लगी। "इसे यहीं सड़क से थोड़ा हटाकर दफ़न कर दो।" कहकर अफ़सर अपने हाथों को झाड़ता हुआ मोटर की ओर बढ़ा।

चार सैनिकों ने फ्रेडरिक को उठाया। दो सैनिक पीछे वाली मोटर से फावड़े निकाल लाये और सड़क से हटकर वृक्षों के एक झुरमुट के नीचे फ्रेडरिक दफ़न कर दिया गया।

पाल पास ही छिपा हुआ था। उसने यह सब अपनी आँखों से देखा। जब फ़ौज की टुकड़ी वहाँ से चली गई तब वह फ्रेडरिक की कब्र की तरफ आया। कुछ क्षण तक वह मौन खड़ा रहा। इसके उपरान्त उसने एक मुट्ठी बर्फ़ उठाकर कब्र पर छोड़ते हुए कहा—"कामरेड फ्रेडरिक तुमने साबित कर दिया कि तुम मनुष्य थे।"

अभ्यास

१. इस कहानी के शीर्षक की सार्थकता समझाइये।

२. इस कहानी से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

३. आप उस जर्मन सिपाही या रूसी पाल की जगह होते तो क्या करते ?

४. इस कहानी से हमें यह पता चलता है कि युद्ध क्यों होते हैं ? क्यों भला ?

———

स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी

(जन्म १८७१ ई० मृत्यु १६३८ ई०)

आपका जन्म उत्तरप्रदेश के राय बरेली ज़िला के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ। घर की गरीबी के कारण आप आजीविका-अर्जन के लिए रेलवे-विभाग में नौकर हो गए। लेकिन उनकी मनस्विता को यह काम रास नहीं आया। एक बार अपने अधिकारी से मतभेद हो जाने पर आपने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

सौभाग्य से ई० १९०३ में इन्हें 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का कार्य मिला। यह काम आपने ई० १९२० तक निभाया और इस अवधि में आपने युगान्तरकारी सूत्रधार के समान हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य के विकास में जो महत्वपूर्ण योग दिया उसके कारण १९०१ से १९२० ई० तक के समय को, हिन्दी साहित्य के इतिहास में, 'द्विवेदी युग' के नाम से स्मरण किया गया है।

द्विवेदी जी ने ब्रज भाषा के स्थान पर वर्तमान खड़ी बोली को साहित्य के माध्यम-रूप में प्रतिष्ठित किया। आप स्वयं न बड़े कवि थे, न कोई उपन्यासकार न नाटककार, फिर भी हिन्दी भाषा का परिष्कार करने तथा हिन्दी साहित्य को नया मोड़ देने में जो प्रभावपूर्ण प्रयत्न आपने किए वे चिर स्मरणीय रहेंगे। आप हिन्दी के पहले प्रबुद्ध आलोचक और निबन्धकार थे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

रानी दुर्गावती

जिस समय अकबर बादशाह की यश-पताका हिमालय से बंगाल की खाड़ी तक फहरा रही थी, उसी समय जबलपुर के पास गढ़मण्डल या गढ़मण्डलां में एक छोटी-सी माण्डलिक रानी के स्वातन्त्र्य की अग्निकणी दूर-दूर तक अपना प्रकाश फैला रही थी। बड़े-बड़े प्रतापी राजा जिस बल-विक्रम को नहीं सह सके, उसी बल-विक्रम की अवहेलना गढ़मण्डल की अधीश्वरी ने निडर होकर की। जब यह विचार करते हैं कि गढ़-मण्डल के सिंहासन पर एक कोमलांगी देवी विराजमान थी, तब हमारे आश्चर्य की सीमा और भी अधिक हो जाती है।

कन्नौज के राजा चन्दनराय के एक कन्या थी। उसका नाम था दुर्गावती। जब वह यौवनवती हुई, तब उसके पिता ने उसे राजपूताने के किसी राजकुमार की अंकलक्ष्मी बनाना चाहा; परन्तु दुर्गावती ने गढ़मण्डल के स्वामी दलपति शाह की वीरता पर मुग्ध होकर उसी को आत्मसमर्पण किया। पिता ने यह

बात, किसी कारण विशेष से, स्वीकृत न की। दलपतिशाह ने जब यह समाचार सुना, तब उसने अपने बाहुबल से उस कन्या-रत्न को प्राप्त करना चाहा। चन्दनराय और दलपतिशाह में संग्राम हुआ। अन्त में विजयलक्ष्मी के साथ लक्ष्मीरूपा दुर्गावती भी दलपति शाह को हस्तगत हुई।

गढ़मण्डल में पहुँचकर दुर्गावती और दलपतिशाह का विधिपूर्वक विवाह हुआ और वे दोनों परमानन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ काल के अनन्तर दुर्गावती गर्भवती हुई और यथा-समय उसे वीरनारायण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस समय वीरनारायण केवल तीन वर्ष का था, विकराल काल ने गढ़मण्डल का राजसिंहासन सूना कर दिया। राजादलपति शाह परलोकवासी हुआ। पति के न रहने से दुर्गावती को परम शोक-हुआ; परन्तु पुत्र के मुख की ओर देखकर और अपने कुटुम्बियों की दी हुई सांत्वना सुनकर उसे कुछ धैर्य हुआ वह धीरे-धीरे से राजकाज स्वयं देखने लगी। रानी दुर्गावती ने बड़ी योग्यता से राज्य का काम करना-आरम्भ किया। वह प्रजा के सुख-दुःख का विचार रखती। राज्य को शत्रुओं से सुरक्षित रखने के अभिप्राय से अपनी सेना को भी सुधारती जाती थी। उसको विदित था कि किसी न किसी दिन मुग़ल अधि-कारियों की मार्जार-दृष्टि उसके छोटे से राज्य पर अवश्य पड़ेगी। इसलिए वह समरांगण में सेना सहित उतरने की तैयारी बराबर करती जाती थी। साथ ही साथ प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए उसके मंगल-विधान की ओर भी वह अपनी दृष्टि रखती थी। स्थान स्थान पर उसने कुएँ और तालाब खुदवाये और अनाथों को आश्रय देने के लिए अनेक उपाय किये। शिल्प और वाणिज्य की ओर भी उसने ध्यान

दिया। सारांश यह कि अपनी प्रजा को सुखी करने के लिए उसने कोई उपाय बाकी न रक्खा।

दुर्गावती की योग्यता, देश-रक्षा के लिए उसकी तत्परता तथा उसकी प्रजा-वत्सलता आदि के विषय में अकबर के अधिकारियों ने उसे अनेक बातें सुनाईं और गढ़मण्डल को अपने अधीन कर लेने के लिए बहुत बार प्रार्थना की; किन्तु उदारहृदय अकबर ने वैसा करना उचित न समझा। तथापि कोमल रस्सी की रगड़ लगने से कठोर पत्थर भी घिस जाता है; अनेक बार परामर्श दिये जाने पर अकबर की भी लोभ-लिप्सा जाग उठी। आसफखाँ नामक एक सरदार को गढ़मण्डल पर चढ़ाई करने के लिए उसने आज्ञा दे दी। एक विधवा और अनाथ अबला का राज्य छीन लेने के लिए दिल्ली के दुर्दमनीय बादशाह का चढ़ाई करना क्या कोई कीर्तिकारिणी बात है? लोभ मनुष्यों का शत्रु है। एक सामान्य मनुष्य से लेकर सम्राट् तक को भी वह नहीं छोड़ता। इसी लोभ के वशीभूत होकर एक अबला के साथ संग्राम-रूपी अनुचित कृत्य करने के लिए अकबर के समान विचारवान् और बलशाली बादशाह ने हठ ठान लिया।

रानी दुर्गावती को जब यह समाचार मिला, तब दुर्बल-चित्त अबला के समान वह भयभीत नहीं हुई, किन्तु सिंहनी के समान क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर उसने अपने क्षत्रियत्व का परिचय देना चाहा। वह जानती थी कि महाप्रतापशाली दिल्लीश्वर के सम्मुख वह कभी जय-लाभ न कर सकेगी, तथापि आततायी के हाथ में आत्मसमर्पण करने की अपेक्षा, अपने देश की रक्षा के निमित्त, वीर नारी के समान रणक्षेत्र में प्राण देना ही उसने उचित जाना। रानी दुर्गावती के इस संकल्प को जान

कर उसकी प्रजा भी जन्म-भूमि की स्वाधीनता बचाने के लिए बद्धपरिकार हुई। पुरुष मात्र, जिनके बाहुयुगल खड्ग-धारण में समर्थ थे, रानी की पताका के नीचे खड़े होकर जयलक्ष्मी की प्राप्ति की लालसा से अपने शस्त्र चमकाने लगे। देखते ही देखते आठ सहस्त्र अश्वारोही आकर वहाँ उपस्थित हो गये और रानी दुर्गावती, मुण्डमालिनी चामुण्डा के समान तुरंगारूढ़ होकर, अपनी सेना के सहित संग्राम-भूमि में आ उतरी।

उधर आसफ़खाँ ने सोच रखा था कि दिल्लीश्वर के प्रचण्ड प्रताप की ज्वाला से भयभीत होकर दुर्गावती अवश्य ही आत्म-समर्पण करेगी। अथवा वह युद्ध ही करेगी तो क्षण-मात्र में उसकी सेना नष्ट हो जायगी। यही समझकर उसने केवल पाँच सहस्त्र अश्वारोही सेना अपने साथ ली। रणक्षेत्र में आकर उसे अपने भ्रम का ज्ञान हुआ, परन्तु उस समय क्या हो सकता था। वीर रानी के उत्साहपूर्ण वाक्यों से उत्साहित होकर गढ़मंडल की सेना शत्रुओं को निर्दयतापूर्वक काटने लगी। रानी के सैन्य का दुःसह तेज न सहकर विपक्षी भाग निकले और आसफ़खाँ बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाने में समर्थ हुआ। विजय-लक्ष्मी को साथ लेकर रानी दुर्गावती गढ़मंडल को लौट आई।

आसफ़खाँ के पलायन करने का समाचार यथासमय अकबर को मिला। सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और डेढ़ वर्ष के अनन्तर विपुल सैन्य के साथ आसफ़खाँ को फिर उसने गढ़-मण्डल पर आक्रमण करने के लिए भेजा। इस बार भी रानी दुर्गावती की सेना ने पूर्ववत् ही प्रचण्ड बल-विक्रम से संग्राम किया। इस बार भी दुर्गावती की सेना की तेजोवह्नि में शत्रु-सेना पतंग के समान दग्ध हो गई। जो कुछ बची, आसफ़खाँ

के साथ भाग निकली। आसफ़खाँ को इस दूसरी हार से अत्याधिक लज्जा हुई। उसने अकबर को मुँह दिखलाना उचित न समझा। उसी ने लोभ दिखाकर गढ़मण्डल पर आक्रमण करने के लिए अकबर को उकसाया था, अतएव उसे अब यह चिन्ता हुई कि किस प्रकार वह अपनी इस कलंककालिमा का प्रक्षालन करे। वह जानता था कि जब तक रानी दुर्गावती का एक भी योद्धा जीवित है, तब तक वह कभी गढ़मण्डल का समर्पण न करेगी। इसीलिए, सरल मार्ग को छोड़कर आसफ़खाँ ने कूटनीति का अवलम्बन किया। गढ़मण्डल में उसने विश्वासघात का बीज बोया। वह बीज लोभ-रूपी जल के सिंचन से अंकुरित होकर शीघ्र ही एक प्रचण्ड पेड़ हो गया। खेद है, इस विश्वासघातक वृक्ष को उखाड़ने में रानी समर्थ न हुई।

अपने राज्य में गृह-विवाद की भयानक मूर्ति देख कर रानी डर गई! उसने जान लिया कि युद्ध में अब विजय की कोई आशा नहीं। तथापि वह अन्यायी आसफ़खाँ के साथ धर्म संग्राम करने से फिर भी न हिचकी। जो लोग उसके साथ संग्राम में प्रसन्नतापूर्वक शामिल होने को सहमत हुए, उनको और अपने एक मात्र पुत्र वीरनारायण को लेकर वह इस बार भी रण-क्षेत्र की ओर प्रस्थानित हुई। अन्त में महा-लोमहर्षण युद्ध हुआ। परन्तु इस बार आसफ़खाँ के सैनिकों की संख्या अपरिमित थी। प्रातःकाल से सायंकाल पर्यन्त युद्ध करके भी रानी को जयलाभ न हुआ। उसने जान लिया कि इस बार मुझे विजय-लक्ष्मी नहीं मिल सकती। इसी समय उसने देखा कि उसका १४ वर्ष का प्रियपुत्र वीरनारायण घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसकी सेना के कई पुरुषों ने उसे सुरक्षित स्थान

पर पहुँचाकर रानी से प्रार्थना की कि इस अंतिम समय में एक बार आप अपने पुत्र से मिल लीजिए। रानी ने उत्तर दिया—"यह समय पुत्र से मिलने का नहीं। यदि मैं रण-भूमि छोड़ूँगी तो यहाँ मुझे न देखकर सेना अस्त-व्यस्त हो जायगी। यदि पुत्र का अन्तकाल उपस्थित ही है तो मुझे हर्ष है कि उसने वीर-धर्म का पालन किया, वीर के समान उसने गति पाई। वह और मैं दोनों शीघ्र ही देव लोक में फिर मिलेंगे, यह समय मिलने का नहीं!" धन्य रानी की वीरता और धन्य उसकी धर्म-निष्ठा! अन्त में युद्ध करते-करते रानी की आँख में एक तीक्ष्ण बाण प्रवेश कर गया। उस बाण को रानी ने बाहर निकालना चाहा, परन्तु वह सफल-मनोरथ न हुई। तब उसने जीवन से निराश होकर बड़ी क्रूरता से विपक्षियों का संहार आरम्भ किया जब रानी ने देखा कि वैरियों द्वारा पकड़े जाने का भय है तब गढ़मण्डल की ओर एक बार देखकर अपने ही खड्ग से अपने सिर को उसने धड़ से अलग कर दिया। रानी का मृतक शरीर शत्रुओं के हाथ न लगे, इसलिए सेना ने उसे शीघ्र ही दूसरे स्थान पर पहुँचा दिया। वहाँ दुर्गावती और वीरनारायण की साथ-ही-साथ अन्तिम क्रिया हुई।

इधर गढ़मण्डल ने आसफ़खाँ के अधीन होकर अकबर के राज्य की सीमा बढ़ाई।

यह भारतवर्ष अनुपम देश है, यहाँ पुरुषों की तो गिनती ही नहीं, कोमल-कलेवरा रमणियाँ भी वीरता में ऐसे-ऐसे काम कर गई हैं जिनका स्मरण होते ही बड़े-बड़े शूरवीरों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। भारत! किसी समय तू इस भूमण्डल में एक ही था!

अभ्यास

१. दुर्गावती कौन थी ? इतिहास में उसे क्यों स्मरण किया जाता है ?

२. अकबर ने उस छोटे से राज्य पर आक्रमण करने के लिए आसफ़खाँ को क्यों आज्ञा दी ?

३. दुर्गावती की ही तरह क्या भारत के इतिहास में कोई और भी वीर नारियाँ हुई हैं ? दो का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

४. आसफ़खाँ के विरुद्ध लड़े गए इस युद्ध को धर्म-संग्राम क्यों कहा गया है ?

श्री रामचन्द्र वर्मा

श्री रामचन्द्र वर्मा हिन्दी-भाषा के उन गिने-चुने विद्वान् साधकों में से हैं, जिन्होंने भाषा-सुधार के लिए उसके प्रामाणिक कोश प्रस्तुत करने में ऐतिहासिक काम किया है। विकासशील भाषा के व्यापक प्रसार और प्रयोग के लिए उसके सुन्दर प्रामाणिक कोशों को प्रस्तुत करने का काम नितान्त परिश्रम साध्य होता है।

हिन्दी में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में 'हिन्दी शब्द-सागर' नाम का जो वृहत् कोश तैयार किया गया उसमें श्री वर्मा आलोचक प्रवर श्री रामचन्द्र शुक्ल के साथ सहायक सम्पादक थे। इन्होंने, विद्यार्थियों तथा सामान्य पाठकों की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए, उस वृहत् कोश का 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' नाम से एक बड़ा उपयोगी संस्करण तैयार किया । सभा की ओर से यह कोश, जिसमें ४२८७१ शब्द थे १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ।

इसके अतिरिक्त आपने 'देवनागरी उर्दू हिन्दी कोश' तथा 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' (१९१६ पृष्ठ) का सम्पादन किया। हिन्दी भाषा के प्रयोग में वैज्ञानिकता लाने के लिये आपने 'अच्छी हिन्दी' तथा 'शब्द साधना' नाम की पुस्तकें लिखी हैं। आपने कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद भी किए हैं जैसे—सैयद सुलेमान नदवी के ग्रन्थ 'अरब और भारत के सम्बन्ध' का सुन्दर अनुवाद। आपने कई बड़े सुन्दर विचार पूर्ण निबन्ध भी लिखे हैं।

श्री रामचन्द्र वर्मा

सृष्टि की उत्पत्ति

बहुत-से लोग यह नहीं जानते होंगे कि पृथ्वी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वह किस प्रकार वर्तमान स्थिति तक पहुँची है। सबसे पहले 'इमैनुअल कांट' ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक सिद्धान्त स्थिर किया था और पीछे से 'लैप्लेस' ने बहुत ही विवेचनापूर्वक उसी सिद्धान्त के आधार पर बहुत से नये और अधिक सूक्ष्म सिद्धान्त स्थिर किये थे। अधिकांश वैज्ञानिक जगत प्रायः उन्हीं सिद्धान्तों से सहमत है। अतः यहाँ पहले हम उन्हीं सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

उन सिद्धान्तों के अनुसार आज भी प्रायः यही माना जाता है कि आरम्भ में केवल आकाश (Ether) था जिसका कुछ अंश किसी तरह वाष्प-खण्डों के रूप में परिणत हो गया। वाष्पों के ये अलग-अलग समूह आकाश में चक्कर लगाने लगे। उनमें से कोई समूह बड़ा था और कोई छोटा। बड़े

समूहों ने कुछ समय में सूर्यों का रूप धारण किया और छोटे समूहों ने ग्रहों का। सृष्टि का यह क्रम अभी तक भी बराबर जारी है। अब तक आकाश में अनेक ऐसे वाष्प-पुंज भ्रमण कर रहे हैं। उनमें हेलियम नामक पदार्थ ही अधिकता से है। इसी लिए उन्हें हेलियम तारे (Helium Stars) कहते हैं। ऐसे तारों का रंग कुछ नीलापन लिये सफेद होता है। धीरे-धीरे इन जलते हुए तारों की गरमी कम होने लगती है और ये कुछ घने और ठोस होने लगते हैं। उस समय उनका रंग कुछ पीला, जैसा कि हमारे सूर्य का है, हो जाता है। जिस समय ये और भी ठोस और ठण्डे हो जाते हैं, उस समय इनका रंग कुछ लाल होने लगता है, और कुछ समय के उपरान्त बहुत अधिक ठोस और ठण्डे होने पर इनका रंग गहरा लाल हो जाता है।

यह तो हुई सूर्यों की उत्पत्ति। अब ग्रहों की उत्पत्ति लीजिये। पहली बात तो यह कि सूर्यों की अपेक्षा ग्रह बहुत छोटे होते हैं, इसीलिए उनका ताप भी बहुत जल्दी घट जाता है और उनमें परिवर्तन भी बहुत शीघ्र होते हैं। दूसरी बात यह है कि ग्रह किसी सूर्य के साथ लग जाता है, जिससे उसकी दशा अन्यान्य सूर्यों से कुछ भिन्न हो जाती है। इस भिन्नता का कारण यह है कि उस पर किसी एक ही सूर्य का प्रभाव पड़ता है। हमारी पृथ्वी इसी प्रकार का एक ग्रह है। पहले यह केवल वाष्प-पुंज थी, पर पीछे यह भी ठोस होने लगी। इसकी भाप बदलकर पानी बनने लगी—बादल बनने लगे और पानी बरसने लगा। पहले तो वह पानी गरमी के कारण फिर भाप बन जाता था, पर जब गरमी कम हुई, तब भाप का बनना कम होने लगा और बरसा हुआ पानी यहीं एकत्र होने लगा। इसी एकत्र पानी से समुद्रों की सृष्टि हुई। इसके उपरान्त धीरे-धीरे नदियों और

पहाड़ों आदि की सृष्टि हुई। जल में जलचरों की और स्थल में वनस्पतियों की सृष्टि हुई और तब नभचर तथा स्थलचर जीव बने। धीरे-धीरे वह उस अवस्था को पहुँची, जिसमें उसे हम लोग इस समय पाते हैं! अभी इस दशा में भी बहुत कुछ परिवर्तन होने को बाकी है। इसका ऊपरी भाग तो ठण्डा हो गया है, पर भीतरी भाग में बहुत कुछ ज्वाला भरी हुई है। अभी वह ज्वाला कम होगी, वायु कम होगी और जल भी कम होगा। उस समय उसकी दशा वैसी ही हो जायगी, जैसी इस समय मंगल की है। तदुपरान्त जब जलवायु का बिल्कुल ही अभाव हो जायगा, तब वह बुध ग्रह के समान मृत हो जायगी, और बहुत सम्भव है कि किसी सूर्य से टकराकर अथवा और किसी तरह भस्म भी हो जाए। लेकिन लाखों करोड़ों वर्षों में पृथ्वी इस दशा को पहुँची है, और अभी उसका अन्त भी लाखों करोड़ों वर्षों में होगा। हां, हम यह बतलाना भूल गए कि ग्रहों के साथ उपग्रह भी होते हैं। उपग्रहों की सृष्टि प्रायः ग्रहों से होती है। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है। ज्योतिषियों का मत है कि हमारी पृथ्वी जिस समय वाष्प के रूप में थी, उसी समय उसमें से एक टुकड़ा निकल कर अलग हो गया था। आजकल के कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह टुकड़ा उसी स्थान से निकला था, जहाँ आजकल प्रशान्त महासागर है। यह टुकड़ा बहुत ही छोटा था। अतः इसके जीवन-नाटक के सभी दृश्य बहुत जल्दी-जल्दी पूरे हो गये और अब वह बिल्कुल मृत है। उसमें नाम-मात्र को भी ताप नहीं रह गया।

यही कारण है कि ग्रहों और उपग्रहों की गति एक ही ओर होती है। वे प्रायः एक ही धरातल में चक्कर लगाते हैं और उनकी कक्षा या भ्रमण-मार्ग प्रायः गोलाकार होता है। सभी सूर्यों,

ग्रहों और उपग्रहों आदि में आरम्भ में बहुत गरमी रहती है और धीरे-धीरे वह गरमी कम होती जाती है। हमारी पृथ्वी की गरमी बहुत अधिक कम हो गई है, तो भी उसके भीतरी भाग में अभी तक बहुत अधिक ज्वाला भरी हुई है। इस गरमी का सब से सरल प्रमाण यह है कि ज्यों-ज्यों हम पृथ्वी के गर्भ में बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों हम गरमी भी अधिक अनुभव करते हैं। हिसाब लगाकर जाना गया है कि भूगर्भ में प्रति पचास या साठ फुट उतरने पर प्रायः एक डिग्री गरमी बढ़ जाती है। खानों और गहरे कुँओं की गरमी से भी यही बात सिद्ध होती है। अनुमान किया जाता है कि ज़मीन के अन्दर तीस मील की गहराई में इतनी अधिक गरमी है कि उसमें पड़ते ही लोहा आप-से-आप गल सकता है, और पृथ्वी के ठीक मध्य में तो प्रायः सवा चार लाख डिग्री की गरमी होगी! पृथ्वी के ऊपर का जो स्थल या ठोस भाग है, वह उस जलते हुए भाग के मुकाबले में कुछ भी नहीं है जो पृथ्वी के अन्दर है। यदि सारी पृथ्वी को मनुष्य का शरीर मान लिया जाय, तो स्थल को चमड़े की झिल्ली मात्र ही मानना होगा, अर्थात् बहुत बड़े जलते हुए आग के गोले पर हमारे स्थल का एक बहुत ही पतला गिलाफ चढ़ा हुआ है।

ऊपर जो बातें बतलाई गई हैं, उन सब से यही सिद्ध होता कि हमारी पृथ्वी किसी समय जलती हुई आग का एक गोला थी और धीरे-धीरे गरमी के कम होने के कारण उसने वतमान रूप धारण किया है। यह रूप धारण करने में इसे लाखों नहीं बल्कि करोड़ों वर्ष लगे हैं। प्रोफेसर डारविन का मत है कि एक ऐसा ज़माना भी था, जब कि पृथ्वी-तल पर भूकम्प की तरंगों के समान इतनी बड़ी-बड़ी तरंगें उठती थीं, जिन के कारण उसका टुकड़ा चन्द्रमा उससे अलग हो गया था। वह टुकड़ा जब समुद्र

पर तैरता होगा, उस समय उसमें बहुत ऊँची-ऊँची तरंगें उठती होंगी। आँधियाँ भी उस समय बहुत ही तेज़ चलती होंगी, जिनके कारण सारा जल और स्थल सदा बहुत ही क्षुब्ध रहता होगा। इन बातों से सिद्ध होता है कि केवल हमारी पृथ्वी का ताप ही दिन पर दिन नहीं घटता जा रहा है, बल्कि उसमें होने वाले अनेक दूसरे उपद्रव (जैसे भूकम्प, समुद्र-कम्प, आँधियाँ आदि) भी बराबर कम होते जा रहे हैं। इन सभी उपद्रवों का जोर दिन पर दिन घटता जा रहा है। लेकिन यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बहुत पुराने ज़माने में जितनी तेज़ी से हमारी पृथ्वी का ताप घटता था, उतनी तेज़ी से अब नहीं घटता। इसी प्रकार बहुत दिनों पहले पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग बहुत जल्दी-जल्दी उभरता और धंसता था। अब उसके उभरने धंसने में भी अपेक्षाकृत बहुत कमी हो गई है। इसी प्रकार भूकम्पों और ज्वालामुखी के प्रकोपों में भी पहले की अपेक्षा अब बहुत कमी हो गई है। हम पहले बता चुके हैं कि हमारी पृथ्वी के भीतरी भाग में बहुत अधिक मान में बहुत ही जलता हुआ तरल पदार्थ है। पर कुछ वैज्ञानिकों का मत इसके विरुद्ध भी है। वे कहते हैं कि पृथ्वी का भीतरी भाग ठोस और ठण्डा है। एक वैज्ञानिक का तो यहाँ तक मत है कि पृथ्वी के भीतरी भाग का घनत्व लोहे से भी अधिक है। एक जर्मन भूगर्भ-शास्त्री ने बहुत से ज्वालामुखी पर्वतों आदि का भली भाँति निरीक्षण करके निश्चित् किया था कि पृथ्वी का भीतरी भाग बिल्कुल ठण्डा और ठोस है और पृथ्वी-तल से साठ मील की गहराई पर उसमें स्थान-स्थान पर अग्नि के समुद्र और झीलें हैं अर्थात् पृथ्वी के भीतरी भाग में तरल अग्नि उसी प्रकार है, जिस प्रकार मधु-मक्खियों के छत्ते के कोषों में शहद भरा रहता है। ज्वालामुखी पर्वतों का उसी अग्नि से सम्बन्ध

रहता है, जिसके कारण ज्वालामुखी का विस्फोट होता है, और भूकम्प भी आता है ! ज्वालामुखी पर्वतों आदि के कारण जो दशा आज कल जापान की है, प्रायः वही दशा किसी पुराने ज़माने में स्काटलैण्ड की भी रही होगी । सम्भव है, इसका कारण यह हो कि समय पाकर किसी एक स्थान की तरल-अग्नि का समुद्र शान्त हो जाता हो और किसी दूसरे स्थान पर उसकी सृष्टि हो जाती हो । कुछ आधुनिक भूगर्भ-शास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी के भीतरी भाग में गरमी तो बहुत अधिक है, पर चारों ओर से उस पर जो दबाव पड़ता है, उस दबाव के कारण वह तरल नहीं रह सकती ।

पृथ्वी की केतु-नाभि चाहे तरल हो चाहे ठोस, पर यह बात सभी लोग मानते हैं कि पृथ्वी के भीतरी भाग में बहुत अधिक ज्वाला, जलती हुई गैसें और गली हुई चट्टानें तथा धातुएँ आदि भरी हुई हैं और उन्हीं के कारण समय-समय पर ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट होता है, भूकम्प आता है, तप्त कुण्डों में से खौलता हुआ पानी निकलता है तथा इसी प्रकार की अन्यान्य अनेक बातें होती हैं । बहुत बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और भूगर्भ-शास्त्रियों ने तो भूगर्भ के सम्बन्ध में बहुत-सी युक्तियाँ लड़ाईं और बहुत-सी बातें बतलाई हैं, पर साधारणतः विचार करने पर यही बात ठीक जान पड़ती है कि उसके भीतर कहीं तरल अग्नि और कहीं ठोस चट्टानें आदि हैं । यदि पृथ्वी का सारा भीतरी भाग एक दम तरल अग्नि ही होता तो उसमें बहुत ही साधारण क्षोभ होने पर भी स्थान-स्थान पर पृथ्वी आप से आप फट जाती और टुकड़े-टुकड़े हो जाती ।

अग्नि सर्वव्यापिनी है और साथ ही वह सारे विश्व का जीवन है । हम चाहे यह न कह सकते हों कि भूगर्भ में कहां

कितनी और कैसी अग्नि है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि उसमें बहुत अधिक अग्नि है। यही अग्नि भूगर्भ में अनेक प्रकार के उपद्रव और परिवर्तन आदि करती है, यही अग्नि ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट करती है, यही पृथ्वी को धंसती है, यही पृथ्वी को उभारती है और यही प्रत्यक्ष रूप से भूकम्प भी लाती है। पृथ्वी के भीतरी ताप के, दिन-प्रति-दिन, घटते जाने के कारण हम कह सकते हैं कि पृथ्वी पर भौतिक उपद्रव भी आज तक उसी मान में घटते आये हैं और भविष्य में भी उसी मान में सदा घटते रहेंगे। पर पृथ्वी की आयु करोड़ों वर्ष की है, इसलिए इस ह्रास का पता एक, दो या चार पीढ़ियों को नहीं लग सकता। ह्रास होता अवश्य है, पर उस ह्रास का स्थूल मान जानने के लिए लाखों वर्ष के अनुभव की आवश्यकता है। अल्प जीवी मनुष्य उस ह्रास का केवल अनुमान कर सकता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना उसके लिए नितांत असंभव है।

अभ्यास

१. सृष्टि की उत्पत्ति का हाल अपने शब्दों में लिखिए।

२. इनका अर्थ स्पष्ट कीजिए :—

वाष्प-खण्ड, भूगर्भशास्त्री, धरती की नाभि।

३. नक्षत्रों का सफेद, लाल या नीला रंग होने का क्या कारण है ?

———

श्री अमृतलाल नागर

श्री अमृतलाल नागर मुन्शी प्रेमचन्द के बाद की पीढ़ी के हिन्दी-साधकों में प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं। साहित्य में आपकी साधना के प्रमुख क्षेत्र—कहानी और उपन्यास हैं। वैसे आपने कुछ एकांकी नाटक तथा फुटकर निबन्ध भी लिखे हैं। इनके निबन्धों में हास्य और व्यंग्य की पुट उन्हें मार्मिक बना देती है।

आपका जन्म आगरा में १७ अगस्त, १९१६ ई० को हुआ। इस समय आप लखनऊ में रहते हैं। इस समय तक लगभग १६-१७ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'एटम बम', 'वाटिका' और 'तुलाराम' कहानी संग्रह हैं तथा 'प्रेम की प्यास', 'सेठ बांके मल', 'सुहाग के नूपुर', 'ये कोठे वालियाँ,' 'गदर के फूल', 'महाकाल' और 'शतरंज के मोहरे' इनके सफल उपन्यास हैं। अन्तिम दो उपन्यासों के कारण आपकी कीर्ति बढ़ी है।

आप बड़े सहृदय, हास्य-प्रिय तथा मिलनसार साहित्यिक हैं।

जापान

6 अगस्त 1945

अमृतलाल नागर

एटम बम

चेतना लौटने लगी। साँस में गंधक की तरह तेज़ बदबूदार और दम घुटाने वाली हवा भरी हुई थी। कोबायाशी ने महसूस किया कि बम के उस प्राण-घातक धड़ाके की गूँज अभी भी उसके दिल में धँस रही है। भय अभी भी उस पर छाया हुआ है। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा है। उसे साँस लेने में तकलीफ होती है, उसकी साँस बहुत भारी और धीमी चल रही है।

हारे हुए कोबायाशी का जर्जर मन इन दोनों अनुभवों से खीझ कर कराह उठा। उसका दिल फिर ग़फ़लत में डूबने लगा। होश में आने के बाद, मृत्यु के पंजे से छूटकर निकल आने पर जो जीवनदायिनी स्फूर्ति और शान्ति उसे मिलनी चाहिए थी, उसके विपरीत यह अनुभव होने से ऊबकर, तन और मन की सारी कमज़ोरी के साथ, वह चिढ़ उठा। जीवन कोबायाशी के

शरीर में अपने अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए विद्रोह करने लगा। उसमें बल का संचार हुआ।

कोबायाशी ने आँखें खोलीं। गहरे कुहासे की तरह दम घुटाने वाला ज़हरीला धुआँ हर तरफ छाया हुआ था। उसके स्पर्श से कोबायाशी को अपने रोम-रोम में हज़ारों सुइयाँ चुभने का-सा अनुभव हो रहा था। रोम-रोम से चिनगारियाँ छूट रहीं थीं। उसकी आँखों में भी जलन होने लगी, पानी आ गया। कोबायाशी ने घबरा कर आँखें मींच लीं।

लेकिन आँखें बन्द कर लेने से तो और भी ज्यादा दम घुटता है। कोबायाशी के प्राण घबरा उठे। वे कहीं भी सुरक्षित न थे। मौत अँधेरे की तरह उस पर छाने लगी। यह हीनावस्था की पराकाष्ठा थी। कोबायाशी की आत्मा रो उठी। हारकर उसने फिर अपनी आँखें खोल दीं। हठ के साथ वह उन्हें खोले ही रहा। ज़हरीला धुआँ लाल-मिर्च के पाउडर की तरह उसकी आँखों में भर रहा था। लाख तकलीफ हो, मगर वह दुनिया को कम से कम देख तो रहा है। बम गिरने के बाद भी दुनिया अभी नेस्त-नाबूद नहीं हुई—आँखें खुली रहने पर यह तसल्ली तो उसे हो ही रही है। गर्दन घुमाकर उसने हिरोशिमा की धरती को देखा, जिस पर वह पड़ा हुआ था। धरती के लिए उसके मन में ममत्व जाग उठा। कमज़ोर हाथ आप ही आप आगे बढ़कर अपने नगर की मिट्टी का स्पर्श करने का सुख अनुभव करने लगे।

मन कहीं खोया था। अपने अन्दर उसे किसी जबरदस्त कमी का एहसास हुआ। यह एहसास बढ़ता ही गया। स्मृति डोलने लगी।

चेतन-बुद्धि पर छाये हुए भय से बचने के लिए अन्तर-चेतना पर किसी बात की विस्मृति का मोटा पर्दा पड़ रहा था।

मौत के चँगुल से छूटकर निकल आने पर ममता की मूर्ति स्वरूप धरती के स्पर्श से, जीवन को स्पर्श करने का सुख उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु भावना उत्पन्न होते ही उसके सुख में घुन भी लग गये। भय ने नीवें डगमगा दीं। अपनी अनास्था को दबाने के लिये वह बार-बार ज़मीन को छूता था। अन्तर के अविश्वास को चमत्कार का रूप देते हुए, इस खुली जगह में पड़े रहने के बावजूद, अपने जीवित बच जाने के बारे में उसे भगवान् की लीला दिखाई देने लगी।

करुणा, सोते की तरह, दिल से फूट निकली। पराजय के आँसू इस तरह अपना रूप बदलकर दिल में झकोरे ले रहे थे। ज़हरीले धुएँ के कारण आँखों में भरे हुए पानी के साथ-साथ वे आँसू भी घुल-मिल कर, गाल से ढुलकते हुए, ज़मीन पर टपकने लगे।

बेहोश होने से कुछ मिनट पहले उसने जिस प्रलय को देखा था, उसकी विकरालता अपने पूरे वज़न के साथ कोबायाशी की स्मृति पर आघात करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर रही थी। वह ठीक-ठीक सोच नहीं पा रहा था कि जो दृश्य उसने देखा, वह सत्य था क्या ?...धड़ाका ! जूड़ी बुखार की कँपकँपी की तरह ज़मीन काँप उठी थी। बम था—दुश्मनों का हवाई हमला। हज़ारों लोग, अपने प्राणों की पूरी शक्ति लगाकर, चीख उठे थे।...कहाँ हैं वे लोग ? वे प्राणान्त चीखें, वह आर्त्तनाद जो बम के धड़ाके से भी अधिक ऊँचा उठ रहा था—वो इस समय कहाँ है ? खुद वह इस समय कहाँ है ? और......

कुछ खो देने का अहसास फिर हुआ। कोबायाशी विचलित हुआ। उसने कराहते हुए करवट बदल कर उठने की कोशिश की, लेकिन उसमें हिलने की भी ताब न थी। उसने फिर अपनी

गर्दन ज़मीन पर डाल दी। हवा में काले-काले ज़र्रे भरे हुए थे। धुआँ, गरमी, जलन, प्यास—उसका हलक़ सूखा जा रहा था। बेचैनी बढ़ रही थी। वह उठना चाहता था। उठकर वह अपने चारों तरफ देखना चाहता था। क्या ?—यह अस्पष्ट था। उसके दिमाग़ में एक दुनिया चक्कर काट रही थी। नगर, इमारतें, जन-समूह से भरी हुई सड़कें, आती-जाती सवारियाँ, मोटरें, गाड़ियाँ, साइकिलें···और···दिमाग इन सब में खोया हुआ कुछ ढूँढ रहा था, अटका, मगर फौरन ही बढ़ गया। जीवन के पच्चीस वर्ष जिस वातावरण से आत्मवत् परिचित और घनिष्ठ रहे थे, उसके दिमाग़ की स्क्रीन पर चलती-फिरती तस्वीरों की तरह नुमायाँ हो रहा था, लेकिन सब कुछ अस्पष्ट, मिटा-मिटा-सा ! कल्पना में ये चित्र बड़ी तेज़ी के साथ झलक दिखा कर बिखर जाते थे। इससे कोबायाशी का मन और उद्विग्न हो उठा।

प्यास बढ़ रही थी। हलक़ में काँटे पड़ गये थे और उसमें उठने की भी ताब न थी। एक बून्द पानी के लिए जिन्दगी देह को छोड़कर चले जाने की धमकी दे रही थी और शरीर फिर भी नहीं उठ पाता था। कोबायाशी को इस वक्त मौत ही भली लगी। बड़े दर्द के साथ उसने आँखें बन्द कर लीं।

मगर मौत न आई।

कोबायाशी सोच रहा था; मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया था, जिसकी यह सज़ा मुझे मिल रही है ? अमीरों और अफ़सरों को छोड़ कर कौन ऐसा आदमी था जो यह लड़ाई चाहता था। दुनिया अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगों से। हमने उनका क्या बिगाड़ा था ? हमें क्यों मारा गया ? प्यास लग रही है। पानी न मिलेगा ? ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है ? ईश्वर ! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था ?"

करुणासागर ईश्वर कोबायाशी के दिल में उमड़ने लगा। आँखों से गंगा-जमना बहने लगी। सब से बड़े मुन्सिफ़ के हुजूर में लाठी और भैंस वाले न्याय के विरुद्ध रो-रो कर फ़रियाद कर रहा था। आँसू हलकान किये दे रहे थे। लम्बी-लम्बी हिचकियाँ बन्ध रही थीं, जिनसे पसलियों को और सारे शरीर को, बार-बार झटके लग रहे थे। इस तरह, रोने से दम घोटने वाला, ज़हरीला धुआँ जल्दी-जल्दी पेट में जाता था। उसका जी मचलने लगा। उसके प्राण अटकने लगे।

प्राणों के भय से एक लम्बी हिचकी को रोकते हुए जो साँस खींची तो कई पल तक वह उसे अन्दर ही रोके रहा, फिर सुबकियों में वह धीरे-धीरे टूटी। रो भी नहीं सकता! कोबायाशी की आँखों में फिर पानी भर आया। कमज़ोर हाथ उठा कर उसने बेजान-सी उँगलियों से अपने आँसू पोंछे।

आँखों के पानी से उँगलियों के दो पोर गीले हुए, उतनी जगह में तरावट आई। कोबायाशी की काँटों पड़ी ज़बान और हलक को फिर से तरावट की तलब हुई। प्यास बगूले-सी फिर भड़क उठी। हठात् उसने अपनी आँसुओं से नम उँगलियाँ ज़बान से चाट लीं। दो उँगलियों के बीच में बिखरी हुई आँसुओं की एक बून्द उसकी ज़बान का ज़ायका बदल गई। और उसे पछतावा होने लगा—इतनी देर रोया मगर बेकार ही गया। उसकी फिर से रोने की तबीयत होने लगी, मगर आँसू अब न निकलते थे। कोबायाशी के दोनों हाथों में ताकत आ गई। नम आँखों से लेकर गीले गालों के पीछे कनपटियों तक आँसू की एक बून्द जुटाकर अपनी प्यास बुझाने के लिए वह उँगलियाँ दौड़ाने लगा। आँसू खुश्क हो चुके थे और कोबायाशी की प्यास दम तोड़ रही थी।

उसे चक्कर आने लगे ! गफ़लत फिर बढ़ने लगी। बराबर सुन्न पड़ते जाने की चेतना अपनी हार पर बुरी तरह से चिढ़ उठी। और उसकी चिढ़ विद्रोह में बदल गई। गुस्सा शक्ति बनकर उसके शरीर में दमकने लगा—काबू से बाहर होने लगा। माथे की नसें तड़कने लगीं। वह एकदम अपने काबू से बाहर हो गया। दोनों हाथ टेककर उसने बढ़े जोश के साथ उठाने की कोशिश की। वह कुछ उठा भी। कमज़ोरी की बजह से माथे में फिर मुरछा आने लगी। उसने सम्हाला; मन भी, तन भी। दोनों हाथ मज़बूती से ज़मीन पर टेके रहा। हाँफते हुए, मुँह से एक लम्बी साँस ली; और अपनी भुजाओं के बल पर घिसट कर वह कुछ और उठा। पीठ लगी तो घूम कर देखा—पीछे दीवार थी। उसने ज़िन्दगी की एक और निशानी देखी। कोबायाशी का हौसला बढ़ा। मौत को पहली शिकस्त देकर पुरुषार्थ ने गर्व का बोध किया। परन्तु पीड़ा और जड़ता का ज़ोर अभी भी कुछ कम न था। फिर भी उसे शान्ति मिली। दीवार की तरफ देखते ही ध्यान बदला। सिर उठा कर ऊँचे देखा, दीवार टूट गई थी। उसे आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई। दीवार से टूटा हुआ मलबा दूसरी तरफ गिरा था। भगवान् ने उसकी कैसी रक्षा की ! जीवन के प्रति फिर से आस्था उत्पन्न होने लगी। टूटी हुई दीवार की ऊँचाई के साथ-साथ उसका ध्यान और ऊँचा गया। उसे ध्यान आया कि यह तो अस्पताल की दीवार है।......अभी-अभी वह अपनी पत्नी को भरती करा के बाहर निकला था। सवेरे से उसे दर्द उठ रहे थे, नई ज़िन्दगी आने को थी। पत्नी, जिसे बच्चा होने वाला था।......डाक्टर नर्स, मरीज़ों के पलंग...डाक्टर ने उससे कहा था 'बाहर जाकर इन्तज़ार करो !' वह फिर बाहर आकर अस्पताल के नीचे ही कँकड़ों की कच्ची सड़क पर सिगरेट

पीते हुए टहलने लगा था। आज उसने काम से भी छुट्टी ले रखी थी। वह बहुत खुश था।—जब अचानक आसमान पर कानों के पर्दे फाड़ने वाला धमाका हुआ था। अँधा बना देने वाली तीव्र प्रकाश की किरणें कहीं से फूट कर चारों तरफ बिखर गईं। पलक मारते ही काले धुएं की मोटी चादर बादलों से घिरे हुए आसमान पर तेजी से बिछती चली गई। काले धुएँ की बरसात होने लगी। चमकते हुए विद्युत्कण, सारे वातावरण में फैल गए थे। सारा शरीर झुलस गया; दम घुटने लगा था। सैंकड़ों चीखें एक साथ सुनाई दी थीं। इस अस्पताल से भी आई होंगी। दीवार उस तरफ गिरी है। और उन चीखों में उसकी पत्नी की चीख भी ज़रूर शामिल रही होगी।... कोबायाशी का दिल तड़प उठा। उसे अपनी पत्नी को देखने की तीव्र उत्कण्ठा हुई।

होश में आने के बाद पहली बार कोबायाशी को अपनी पत्नी का ध्यान आया था। बहुत देर से जिसकी स्मृति खोई हुई थी, उसे पाकर कोबायाशी को एक पल के लिए राहत हुई। इससे उसकी उत्कण्ठा का वेग और तीव्र हो गया।

साल भर पहले उसने विवाह किया था। एक वर्ष का यह सुख उसके जीवन की अमूल्य निधि बन गया था। दुःख, यातना और संघर्ष के पिछले चौबीस वर्षों के मरुस्थल से जीवन में आज की यह महायन्त्रणा जुड़ कर सुख-शान्ति के एक वर्ष को, पानी की एक बून्द की तरह सोख गई थी।

बचपन में उसके माँ-बाप मर गये थे। एक छोटा भाई था जिसके भरण-पोषण के लिए कोबायाशी को दस बरस की उम्र में ही बुजुर्गों की तरह मर्द बनना पड़ा था। दिन और रात जी तोड़ कर मेहनत-मज़दूरी की, उसे शाहज़ादे की तरह पाल-पोस

कर बड़ा किया। तीन वर्ष हुए वह फौज में भरती होकर चीन की लड़ाई पर चला गया। और फिर कभी न लौटा।

अपने भाई को खोकर कोबायाशी ज़िन्दगी से ऊब गया था। जीवन से लड़ने के लिए उसे कहीं से प्रेरणा नहीं मिलती थी। वह निराश हो चुका था। बेवा मकान मालकिन की लड़की उसके जीवन में नया रस ले आयी। उनका विवाह हुआ।... और आज उसके घर में एक नयी ज़िन्दगी आने वाली थी। आज सवेरे से ही वह बड़े जोश में था। उसके सारे जोश और उल्लास पर यह गाज गिरी! ज़हरीले धुएँ की तपिश ने उसके अन्तर तक को भून दिया था। वेदना असह्य हो गई थी—चेतना लुप्त हो गई।

अपनी पत्नी से मिलने के लिए कोबायाशी सब खोकर तड़प रहा था। वह जैसे बच गया वैसे ही भगवान् ने शायद उसे भी बचा लिया हो। लेकिन दीवार तो उधर गिरी है। "नहीं!"

—कोबायाशी चीख उठा। होश में आने के बाद पहली बार उसका कंठ फूटा था। सारे शरीर में उत्तेजना की एक लहर दौड़ गई। स्वर की तेज़ी से उसके सूखे हुए निष्प्राण कंठ में खराश पैदा हुई। प्यास फिर होश में आयी। कोबायाशी के लिए बैठा रहना असह्य हो गया। अन्दरूनी जोम का दौरा कमज़ोर शरीर को झिंझोड़ कर उठाने लगा। दीवार का सहारा लेकर वह अपने पागल जोश के साथ तेज़ी से उठा। वह दौड़ना चाहता था। दिमाग में दौड़ने की तेज़ी लिए हुए, कमज़ोर और डगमगाते हुए पैरों से वह धीरे-धीरे अस्पताल के फाटक की तरफ़ बढ़ा।

फाटक टूटकर गिर चुका था। अन्तर मलवा-मिट्टी ज़मीन की सतह से लगा हुआ पड़ा था। कुछ भी नहीं--वीराना! जैसे

यहाँ कभी कुछ बना ही न था। सब मिट्टी और खंडहर! दूर-दूर तक वीराना—खाली! खाली! खाली! उसकी पत्नी नहीं है। उसकी दुनिया नहीं है। वह दुनिया जो उसने पच्चीस बरसों तक देखी, समझी और बरती थी, आज उसे कहीं भी नहीं दिखायी पड़ती। सपने की तरह वह काफूर हो चुकी है।

मीलों तक फैली हुई वीरानी को देखकर वह अपने को भूल गया, अपनी पत्नी को भूल गया। इस महानाश के विराट् शून्य को देखकर उसका अपनापन उसी में विलीन हो गया। उसकी शक्ति उस महाशून्य में लय हो गई। जीवन के विपरीत यह अनास्था उसे चिढ़ाने लगी। टूटी दीवार का सहारा छोड़कर वह बेतहाशा दौड़ पड़ा। वह ज़ोर-ज़ोर से चीख रहा था: "मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा?" मीलों तक उजड़े हुए हिरोशिमा नगर के इस खंडहर में लाखों निर्दोष प्राणियों की आत्मा बनकर पागल कोबायाशी चीख रहा था: "मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा?"

× × ×

कैम्प अस्पताल में हज़ारों ज़ख्मी और पागल लाये जा रहे थे। डाक्टरों को फ़ुर्सत नहीं, नर्सों को आराम नहीं, लेकिन इलाज कुछ भी नहीं हो रहा था। क्या इलाज करें? चारों ओर चीख-चिल्लाहट, दर्द और यंत्रणा का हंगामा! "गोरा—दुश्मन! खुदा—दुश्मन! बादशाह—दुश्मन!"— पागलपन के उस शोर में हर तरफ अपने लिए दर्द का, अपने परिवार और बच्चों के लिए सवाल था, जिसकी यह सज़ा उन्हें मिली है! और दुश्मनों के लिए नफरत थी, जिन्होंने बिना किसी अपराध के उनकी जान ली।

अस्पताल के बरामदे में एक मरीज़ चिल्ला उठा: "मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा?"

अस्पताल के इंचार्ज डाक्टर सुजुकी इन तमाम आवाजों के बीच में खोये हुए खड़े थे। वह हार चुके थे। कल से उन्हें नींद नहीं, भूख-प्यास नहीं। ये पागलों का शोर, दर्द, चीख, कराह! उनका दिल, दिमाग और जिस्म थक चुका था। अभी थोड़ी देर पहले उन्हें खबर मिली थी, नागासाकी पर भी एटम बम गिराया गया। वे इससे चिढ़ उठे थे 'क्यों नहीं बादशाह और वज़ीर हार मान लेते? क्या अपनी झूठी आन के लिए वह जापान को तबाह कर देंगे?" उन्हें दुश्मनों पर भी गुस्सा आ रहा था: "इन्हें क्यों मारा गया? ये किसी के दुश्मन नहीं थे। इन्हें अपने लिये साम्राज्य की चाह नहीं थी। अगर इनका अपराध है तो केवल यही कि यह अपने बादशाह के मजबूरन बनाये हुए गुलाम हैं। व्यक्ति की सत्ता के शिकार हैं। संस्कारों के गुलाम हैं।......दुश्मन इन्हें मार कर खुश हैं। जापान की निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाड़ा था जो उन पर एटम बम बरसाये गये? विज्ञान की नयी खोज की शक्ति आज़माने के लिए उन्हें लाखों बेज़बान बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था? क्या यह धर्म युद्ध है?—सदादर्शों के लिये लड़ाई हो रही है? एटम बम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतन्त्र करने की योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की ज़िद है। ऐसी ज़िद जो इन्सान को तबाह करके ही छोड़ेगी।...और इन्सानियत के दुश्मन कहते हैं कि एटम बम का आविष्कार मानव बुद्धि की सब से बड़ी सफलता है।...हिं पागल कहीं के!...

नर्स आयी। उसने कहा: "डाक्टर सेण्टर से खबर आयी है, और नये मरीज़ भेजे जा रहे हैं।"

डाक्टर सुजुकी के थके चेहरे पर सनक भरी सूखी हँसी

दिखाई दी। उन्होंने जवाब दिया : "इन नये मुर्दा मरीज़ों के लिये नयी ज़िन्दगी कहाँ से लाऊँगा, नर्स ? विनाश-लोलुप स्वार्थी मनुष्य शक्ति का प्रयोग भी जीवन नष्ट करने लिये ही कर रहा है ; फिर निर्माण का दूसरा जरिया ही क्या रहा ? फेंक दो इन ज़िन्दा लाशों को हिरोशिमा की वीरान धरती पर !—या उन्हें ज़हर दे दो ! अस्पताल और डाक्टरों का दुनिया में कोई काम नहीं रहा।"

नर्स के पास इन फ़िज़ूल की बातों के लिए समय नहीं था।—नये मरीज़ आ रहे हैं सैकड़ों अस्पताल में पड़े हैं। वह डाक्टर पर झुँझला उठी :

"यह वक्त इन बातों का नहीं है डाक्टर ! हमें ज़िन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फर्ज़ है। ऐटम की शक्ति से हार कर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को चुपचाप मरते हुए देखते रहेंगे ? चलिये आइये, मरीज़ों को इंजेक्शन लगाना है, आगे का काम करना है।"

नर्स डाक्टर सुज़ुकी का हाथ पकड़कर तेजी से आगे बढ़ गई।

अभ्यास

१. कोबायाशी कौन था ? इस कहानी से उसके बारे में कितनी जानकारी आप को मिल सकी है ?

२. हिरोशिमा नाम का यह नगर कहाँ है। इस पर यह विपत्ति कैसे आई थी ?

३. इस कहानी से लेखक हमें क्या समझाना चाहता है ?

————

स्व० मुंशी प्रेमचन्द

(जन्म सन् १८८० ई० निधन १६३६ ई०)

प्रेमचन्द जी का जन्म उत्तर प्रदेश के ज़िला बनारस के एक देहात में हुआ था। पिता डाकखाने में क्लर्क थे। शैशव में ही माता का देहान्त हो गया तथा १४ वर्ष की अवस्था में पिता का भी देहान्त हो गया। दसवाँ दर्जा पास करके स्कूल के १८ रु० मासिक पर अध्यापक हो गए। प्राइवेट इम्तहान देकर बी० ए० पास किया। आप ने १९०७ ई० से कहानी लिखना शुरु किया। उस समय आप 'धनपतराय' के नाम से उर्दू में लिखते थे। हिन्दी में लिखी आपकी पहली कहानी १९१६ ई० में सरस्वती में छपी। १९१९ के असहयोग आन्दोलन के समय आपने सरकारी नौकरी छोड़ दी और साहित्य-साधना को ही जीवन का लक्ष्य बना लिया। इन्हें इस क्षेत्र में इतनी सफलता मिली कि ये अपने युग के सर्व श्रेष्ठ कलाकार माने गए। छोटी कहानी और उपन्यास दोनों क्षेत्रों में आपने अपने समय के जन-जीवन को इतनी मार्मिकता के साथ अँकित किया कि दूसरे लेखक भी उनका अनुकरण करने के लिए विवश होने लगे। आपने कला की धारा का रुख मोड़ दिया था। हिन्दी में नई कहानी के प्रतिष्ठापक आप ही हैं। आपने लगभग ३०० कहानियाँ लिखीं। आपके द्वारा लिखे गए उपन्यासों की संख्या एक दर्जन के लगभग है, जिनमें 'गोदान' आज भी हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में चोटी की रचना माना जाता है। मु० प्रेमचन्द को 'उपन्यास-सम्राट्' कहा जाता है।

स्व० मुंशी प्रेमचन्द

भिखारी जमींदार

(रंग भूमि से)

वेग से चलती हुई गाड़ी रुकावटों को फांद जाती है। सूरदास समझाने से और भी ज़िद पकड़ गया। सीधे गोदाम के बरामद में जाकर रुका। इस समय वहाँ बहुत से चमार जमा थे। खालों की खरीद हो रही थी। चौधरी ने कहा—आओ सूरदास, कैसे चले ?

सूरदास इतने आदमियों के सामने अपनी इच्छा न प्रकट कर सका। संकोच ने उसकी जबान बन्द कर दी। बोला—कुछ नहीं, ऐसे ही चला आया।

ताहिर—साहिब इनसे पीछे वाली ज़मीन मांगते हैं, मुँह मांगे दाम देने पर तैयार हैं पर यह किसी तरह राजी नहीं होते। उन्होंने खुद समझाया, मैंने कितनी मिन्नत की लेकिन इनके दिल में कोई बात जमती ही नहीं।

लज्जा अत्यन्त निर्लज्ज होती है। अन्तिम काल में भी, जब हम समझते हैं कि उसकी उल्टी साँसें चल रही हैं, वह सहसा चैतन्य हो जाती है, और पहले से भी अधिक कर्तव्यशील हो जाती है। हम दुरवस्था में पड़ कर किसी मित्र से सहायता की याचना करने को घर से निकलते हैं, लेकिन मित्र से आँखें चार होते ही लज्जा हमारे सामने आकर खड़ी हो जाती है, और हम इधर-उधर की बातें करके लौट आते हैं। यहाँ तक कि हम एक शब्द भी ऐसा मुँह से नहीं निकलने देते, जिस का भाव हमारी अन्तर्वेदना का द्योतक हो।

ताहिरअली की बातें सुनते ही सूरदास की लज्जा ठट्टा मारती हुई बाहर निकल आई। बोला—मियाँ साहब, वह जमीन तो बाप-दादों की निशानी है; भला मैं उसे बय या पट्टा कैसे कर सकता हूँ! मैंने उसे धर्म-काज के लिए संकल्प कर दिया है।

ताहिर—धरम काज बिना रुपये के कैसे होगा? जब रुपये मिलेंगे तभी तो तीरथ करोगे, साधु-सन्तों की सेवा करोगे, मन्दिर कुआँ बनवाओगे!

चौधरी—सूरे, इस बखत अच्छे दाम मिलेंगे। हमारी सलाह तो यही है कि दे दो, तुम्हारा कोई उपकार तो उससे होता नहीं।

सूरदास—मुहल्ले भर की गउएं चरती हैं, क्या इससे पुन्न नहीं होता! गउ की सेवा से बढ़ कर और कौन पुन्न का का काम है?

ताहिर—अपना पेट पालने के लिए तो भीख माँगते फिरते हो, चले हो दूसरों के साथ पुन्न करने। जिन की गायें चरती हैं, वे तो तुम्हारी बात भी नहीं पूछते, एहसान मानना तो दूर रहा। इसी धरम के पीछे तुम्हारी यह दशा हो रही है, नहीं तो ठोकरें न खाते फिरते।

ताहिरअली खुद बड़े दीनदार आदमी थे, पर अन्य धर्मों की अवहेलना करने में उन्हें संकोच न होता था। वास्तव में वह इसलाम के सिवा और किसी धर्म को धर्म ही नहीं समझते थे।

सूरदास ने उत्तेजित होकर कहा—मियाँ साहब, धरम एहसान के लिए नहीं किया जाता। नेकी करके दरिया में डाल देनी चाहिए।

ताहिर—पछताओगे और क्या। साहब से जो कुछ कहोगे, वही करेंगे। तुम्हारे लिए घर बनवा देंगे, माहवार गुज़ारा देंगे, मिठुआ को किसी मदरसे में पढ़ने भेज देंगे, उसे नौकर रखा देंगे, तुम्हारी आँखों की दवा करा देंगे, मुमकिन है, सूझने लगे। आदमी बन जाओगे। नहीं तो धक्के खाते रहोगे।

सूरदास पर और किसी प्रलोभन का असर तो न हुआ, हाँ दृष्टि-लाभ की सम्भावना ने जरा नरम कर दिया। बोला—क्या जनम के अन्धों की दवा भी हो सकती है?

ताहिर—तुम जनम के अन्धे हो क्या? तब तो मजबूरी है। लेकिन वह तुम्हारे आराम के इतन सामान जमा कर देंगे कि तुम्हें आँखों की ज़रूरत ही न रहेगी।

सूरदास—साहब, बड़ी नामूसी होगी। लोग चारों ओर से धिक्कारने लगेंगे।

चौधरी—तुम्हारी जायदाद है, बय करो, चाहे पट्टा लिखो, किसी दूसरे को दखल देने का क्या मजाज है।

सूरदास—बाप-दादों का नाम तो नहीं डुबाया जाता।

मूर्खों के पास युक्तियाँ नहीं होतीं, युक्तियों का उत्तर वे हठ से देते हैं। युक्ति कायल हो सकती है, नरम हो सकती है, भ्रान्त हो सकती है। हठ को कौन कायल करेगा?

सूरदास की ज़िद से ताहिरअली को क्रोध आ गया। बोले—तुम्हारी तकदीर में भीख माँगना लिखा है, तो कोई क्या कर सकता है। इन बड़े आदमियों से अभी पाला नहीं पड़ा है। अभी खुशामद कर रहे हैं, मुआवज़ा देने पर तैयार हैं, लेकिन तुम्हारा मिज़ाज नहीं मिलता और यही जब कानूनी दाँव-पेच खेलकर ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेंगे, दो-चार सौ रुपये बराय-नाम मुआवज़ा दे देंगे तो सीधे हो जाओगे। मुहल्ले वालों पर भूले बैठे हो। पर देख लेना, जो कोई पास भी फटके। साहब यह जमीन लेंगे जरूर, चाहे खुशी से दो चाहे रो कर।

सूरदास ने गर्व से उत्तर दिया—खाँ साहब, अगर जमीन जाएगी, तो इसके साथ मेरी जान भी जायगी।

यह कहकर उसने लकड़ी सम्भाली और अपने अड्डे पर आ बैठा।

उधर दयागिर ने जाकर नायकराम से यह समाचार कहा। बजरंगी भी बैठा था। यह खबर सुनते ही दोनों के होश उड़ गये। सूरदास ही ने धोका दिया। बजरंगी ने चिन्तित होकर कहा—अब क्या करना होगा पण्डा जी, बताओ?

नायकराम—करना क्या होगा, जैसा किया है वैसा भोगना होगा। जाकर अपनी घरवाली से पूछो। उसी ने आज आग लगाई थी। जानते तो हो कि सूरे मिठुआ पर जान देता है, फिर क्यों भैरों की मुरम्मत नहीं की। मैं होता तो कभी भैरों को दो-चार खरी खोटी सुनाये बिना न जाने देता, और नहीं तो दिखावे के लिए ही सही।

संध्या हो गई थी। किन्तु फागुन लगने पर भी सरदी के मारे हाथ-पाँव अकड़ते थे। ठण्डी हवा के झोंके शरीर की हड्डियों में चभे जाते थे। जाड़ा, इन्द्र की मदद पाकर अपनी

बिखरी हुई शक्तियों का संचय कर रहा था, और प्राण पण से समय-चक्र को पलट देना चाहता था। बादल भी थे, बून्दें भी थीं, ठण्डी हवा भी थी, कुहरा भी था। इतनी विभिन्न शक्तियों के मुकाबिले में ऋतुराज की एक न चलती थी। लोग लिहाफ में यों मुह छिपाये हुए थे, जैसे चूहे बिलों में से झाँकते हैं। दुकानदार अँगीठियों के सामने बैठे हाथ सेकते हुए पैसों के सौदे नहीं, मरौवत के सौदे बेचते थे। राह चलते लोग अलाव पर यों गिरते थे, मानों दीपक पर पतंग गिरते हों। बड़े घरों की स्त्रियाँ मनाती थीं—मिसराइन न आये, तो आज भोजन बनायें, चूल्हे के सामने बैठने का अवसर मिले। चाय की दुकानों पर जमघट रहता था। ठाकुरदीन के पान छावड़ी में पड़े सड़ रहे थे, पर उसकी हिम्मत न पड़ती थी कि उन्हें फेरे। सूरदास अपनी जगह पर तो आ बैठा था, पर इधर-उधर से सूखी टहनियाँ बटोरकर आग जला ली थी और हाथ सेक रहा था। सवारियाँ आज कहाँ। हाँ कोई इक्का-दुक्का मुसाफिर निकल जाता था, तो बैठे-बैठे उसका कल्याण मना लेता था। जब से सैयद ताहिर ने उसे धमकियाँ दी थीं; ज़मीन के निकल जाने की शंका उसके हृदय पर छाई रहती थी। सोचता—क्यों, इसी दिन के लिए मैंने इस ज़मीन का इतना जतन किया था? मेरे दिन सदा यों ही थोड़े ही रहेंगे, कभी तो लच्छमी प्रसन्न होगी। अन्धों की आखें न खुलें, पर भाग तो खुल सकता है! कौन जाने कोई दानी मिल जाये, या मेरे ही हाथ में धीरे-धीरे कुछ रुपये इकट्ठे हो जाएँ। बनते देर नहीं लगती। यही अभिलाषा थी कि यहीं एक कुँआ और एक छोटा-सा मन्दिर बनवा देता। मरने के पीछे अपनी कुछ निशानी रहती। नहीं तो कौन जानेगा कि अन्धा कौन था। पिसनहारी ने कुआँ खुदवाया था

आज तक उसका नाम चला आता है। झक्कड़ साईं ने बावली बनवाई थी, आज तक झक्कड़ की बावली मशहूर है। ज़मीन निकल गई, नाल डूब जाएगा। रुपये मिले भी तो किस काम के ?

नायकराम उसे ढाढस देता रहता था—तुम कुछ चिन्ता मत करो, कौन माँ का बेटा है, जो मेरे रहते तुम्हारी ज़मीन निकाल ले। लहू की नदी बहा दूँगा। वह है किस गुमान में, बस तुम हामी न भरना। किन्तु इन शब्दों से जो तस्कीन होती थी, वह भैरों और जगधर की ईर्ष्यापूर्ण वितण्डाओं से मिट जाती थी, और वह एक लम्बी साँस खींचकर रह जाता था।

वह इन्हीं विचारों में मग्न था कि नायकराम कन्धे पर लट्ठ रखे, एक अँगोछा कन्धे पर डाले, पान के बीड़े मुँह में भरे, आकर खड़ा हो गया और बोला, सूरदास बैठे तापते ही रहोगे। शाम हो गई, हवा खाने वाले अब इस ठण्ड में न निकलेंगे। खाने भर को मिल गया कि नहीं ?

सूरदास—कहाँ महाराज, आज तो एक भगवान् से भी भेंट न हुई।

नायकराम—जो भाग्य में था, मिल गया। चलो, घर चलें। बहुत ठंड लगती हो, तो मेरा यह अँगोछा कंधे पर डाल लो। मैं तो इधर आया था कि कहीं साहब मिल जाये तो दो-दो बातें कर लूँ। फिर एक बार उनकी और हमारी भी हो जाय।

सूरदास चलने को उठा ही था कि सहसा एक गाड़ी की आहट मिली। रुक गया। आस बंधी। एक क्षण में फिटन आ पहुँची। सूरदास ने आगे बढ़कर कहा—दाता, भगवान् तुम्हारा कल्याण करे, अन्धे की खबर लीजिए।

फिटन रुक गई, और चतारी के राजा साहब उतर पड़े। नायकराम उनका पण्डा था। साल में दो-चार सौ रुपये उनकी रियासत से पाता था। उन्हें आशीर्वाद देकर बोला—सरकार का इधर कैसे आना हुआ? आज तो बड़ी ठंड है।

राजा साहब—यही सूरदास है, जिसकी ज़मीन आगे पड़ती है? आओ तुम दोनों आदमी मेरे साथ बैठ जाओ, मैं ज़रा उस ज़मीन को देखना चाहता हूँ।

नायकराम—सरकार चलें, हम दोनों पीछे-पीछे आते हैं।

राजा साहब—अजी, आकर बैठ जाओ, तुम्हें आने में देर होगी, और मैंने अभी संध्या नहीं की है।

सूरदास—पण्डा जी, तुम बैठ जाओ, मैं दौड़ता हुआ चलूंगा, गाड़ी के साथ ही साथ पहुँचूँगा।

राजा साहब—नहीं-नहीं, तुम्हारे बैठने में कोई हरज नहीं है, तुम इस समय भिखारी सूरदास नहीं, ज़मींदार सूरदास हो।

नायक राम—बैठो सूरे, बैठो। हमारे सरकार साक्षात् देवरूप हैं।

सूरदास—पण्डा जी, मैं……

राजा साहब—पण्डा जी, तुम इनका हाथ पकड़कर बिठा दो, यों न बैठेंगे।

नायक राम ने सूरदास को गोद में उठाकर गद्दी पर बिठा दिया, आप भी बैठे, और फिटन चली। सूरदास को अपने जीवन में फिटन पर बैठने का यह पहला अवसर था, ऐसा जान पड़ता था कि मैं उड़ा जा रहा हूँ। तीन-चार मिनट में जब गोदाम पर गाड़ी रुक गई, और राजा साहब उतर पड़े तो सूरदास को आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी क्यों कर आ गए।

राजा साहब—ज़मीन तो बड़े मौके की है।

सूरदास—सरकार, बाप-दादों की निशानी है।

सूरदास के मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ उठ रही थीं—क्या साहब ने इनको यह ज़मीन देखने के लिए भेजा है? सुना है, ये बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं तो इन्होंने साहब को सम[illegible] न दिया। बड़े आदमी सब एक होते हैं, चाहे हिन्दू हों [illegible] तभी तो मेरा इतना आदर कर रहे हैं, जैसे बकरे को काटने से पहले उसे भर पेट दाना खिला देते हैं। लेकि[illegible] की बातों में आने वाला नहीं हूँ।

राजा साहब—आसामियों के साथ बन्दोवस्त है?

[illegible]करराम—नहीं सरकार, ऐसे ही परती पड़ी रहती है [illegible] मुहल्ले की गउएँ [illegible]ने आती हैं। उठा दी जाए [illegible] कम नफा न हो। [illegible]ह कहता है ज़ब भगवान मुझे य[illegible] भर [illegible] दे देता है, [illegible] इसे क्यों उठाऊँ।

[illegible] साहब—अच्छा तो सूरदास दान लेता ही नहीं [illegible] ऐसे [illegible] के दर्शनों ही से पुण्य होता है।

[illegible]यकराम [illegible]गाह में सूरदास का इतना आदर [illegible] था। बोले—हजूर, उस जन्म का कोई बड़ा [illegible]त्मा है।

राजा साहब—उस जन्म का नहीं, इस जन्म का महात्मा है।

सच्चा दानी प्रसिद्धि का अभिलाषी नहीं होता। सूरदास को अपने त्याग और दान के महत्व का ज्ञान ही न था। शायद होता, तो स्वभाव में इतनी सरलता दीनता न रहती, अपनी प्रशंसा कानों को मधुर लगती है। सभ्य सृष्टि में दान का यही सर्वोत्तम पुरस्कार है। सूरदास का दान पृथ्वी या आकाश का दान था, जिसे स्तुति या कीर्ति की चिन्ता नहीं होती। उसे राजा साहब की उदारता में कपट की गन्ध आ रही थी। वह यह जानने के

लिए विकल हो रहा था कि राजा साहब का इन बातों से अभि-
प्राय क्या है।

नायक राम राजा को खुश करने के लिए सूरदास का गुणा-
करने लगे—धर्मावतार इतने पर भी इन्हें चैन नहीं
ँ धर्मशाला, मन्दिर और कुआँ बनवाने का विचार कर
।

राजा साहब—वाह, तब तो बात ही बन गई। क्यों सूरदास,
म इस ज़मीन में से ९ बीघे मिस्टर जान सेवक को दे दो
ाभिलाषा भी पूरी हो जाएगी ाहब का काम भी
एगा। दूसरों से इतने अच्छे मिलेंगे। बोलो,
ान रुपये दिलवा दूँ।

नायक राम सूरदास को मौन देखकर डरे कि क
ैठा, तो मेरी बात गई। बोले—स
हो न, चतारी के महाराज हैं। ो दरबार
रिश होती है। मिनिस्पलटी के सब से बड़े हाकिम
के हुक्म बिना कोई अपने द्वार पर खूँटा भी नहीं
सकता। चाहें तो सब इक्के वालों को पकड़वा के सारे शहर का
पानी बन्द कर दें।

सूरदास—जब आपका इतना बड़ा अखतियार है, तो साहब
को कोई दूसरी जमीन क्यों नहीं दिला देते?

राजा साहब—ऐसे अच्छे मौके पर शहर में दूसरी जमीन
मिलनी मुश्किल है। लेकिन तुम्हें इसके देने में क्या आपत्ति
है? इस तरह न जाने कितने दिनों में तुम्हारी मनोकामनाएँ पूरी
होंगी। यह तो बहुत अच्छा अवसर हाथ आया है। रुपये लेकर
धर्म-कार्य में लगा दो।

सूरदास—महाराज, मैं खुशी से जमीन न बेचूँगा।

नायक राम—सूरे, कुछ भंग तो नहीं खागये हो ? कुछ ख्याल है, किससे बातें कर रहे हो ?

सूरदास—पण्डा जी, सब खियाल है आँखें नहीं हैं, तो क्या अक्किल भी नहीं है। पर जब मेरी चीज है ही नहीं, तो मैं उसका बेचने वाला कौन होता हूँ।

राजा साहब—यह जमीन तो तुम्हारी ही है ?

सूरदास—नहीं सरकार, मेरी नहीं, मेरे बाप-दादों की है मेरी चीज वही, जो मैंने अपने बाँह-बल से पैदा की हो। जमीन मुझे धरोहर मिली है, मैं इसका मालिक नहीं हूँ।

राजा साहब—सूरदास, तुम्हारी ये बातें मेरे मन में बै गईं। अगर और जमींदारों के दिल में भी ऐसे ही भाव होते, तो आज सैंकड़ों घर यों तबाह न होते। केवल भोग-विलास के लिए लोग बड़ी-बड़ी रियासतें बरबाद कर देते हैं। पण्डा जी, मैंने सभा में यही प्रस्ताव पेश किया है कि जमींदारों को अपनी जायदाद बेचने का अधिकार न रहे। लेकिन जो जायदाद धर्म-कार्य के लिए बेची जाय उसे मैं बेचना नहीं कहता।

सूरदास—धर्मावतार, मेरा तो इस जमीन के साथ इतना ही नाता है की जब तक जियूँ, इसकी रक्षा करूँ, और मरूँ, तो इसे ज्यों का त्यों छोड़ जाऊँ।

राजा साहब—लेकिन यह तो सोचो कि तुम अपनी जमीन का एक भाग केवल इसलिए दूसरों को दे रहे हो कि मन्दिर आदि बनवाने में लिए रुपये मिल जायें।

नायक राम—बोलो सूरे, महाराज की इस बात का क्या जवाब देते हो ?

सूरदास—मैं सरकार की बातों का जवाब देने जोग हूँ कि जवाब दूँ ? लेकिन इतना तो सरकार जानते ही हैं कि लोग गली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लेते हैं। साहब पहले तो न बोलेंगे, फिर धीरे-धीरे हाता बना लेंगे, कोई मन्दिर में न जाने पायेगा, उनसे कौन रोज-रोज लड़ाई करेगा ?

नायक राम—दीनबन्धु, सूरदास ने यह बात पक्की कही, बड़े आदमियों से कौन लड़ता फिरेगा ?

राजा साहब—साहब क्या करेंगे, क्या तुम्हारा मन्दिर खोद कर फेंक देंगे ?

नायक राम—बोलो सूरे, अब क्या कहते हो ?

सूरदास—सरकार, गरीब की घर वाली गाँव भर की भावज होती है। साहब किरस्तान हैं, धरमशाले में मताकू का गोदाम बनायेंगे, मन्दिर में उनके मजूर सोवेंगे, कुएँ पर उनके मजूरों का अड्डा होगा, बहू-बेटियाँ पानी भरने न जा सकेंगी। साहब न करेंगे, साहब के लड़के करेंगे। मेरे बाप-दादों का नाम डूब जाएगा। सरकार, मुझे इस दलदल में न फँसाइए।

नायक राम—धर्मावतार, सूरदास की बात मेरे मन में बैठती है। थोड़े दिनों में मन्दिर, धर्मशाला, कुआँ सब साहब का हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं।

राजा साहब—अच्छा यह भी माना, लेकिन ज़रा यह भी तो सोचो कि इस कारखाने से लोगों को क्या-क्या फायदा होगा। हजारों मजदूर, मिस्त्री, बाबू, मुंशीं, लुहार, बढ़ई आकर आबाद हो जायेंगे। एक अच्छीं बस्ती हो जायेगी, बनियों की नई-नई दुकानें खुल जायेंगी, आस-पास के किसानों को अपनी शाक भाजी लेकर शहर न जाना पड़ेगा, यहाँ खरे दाम मिल जायेंगे।

कुंजड़े, खटिक, ग्वाले, धोबी, दरजी सभी को लाभ होगा। क्या तुम इस पुण्य के भागी न बनोगे ?

नायक राम—अब बोलो सूरे, अब तो कुछ नहीं कहना है ? हमारे सरकार की भलमंसी है कि तुम से इतनी दलील कर रहे हैं। दूसरा हाकिम होता तो, एक ही हुकमनामे से सारी जमीन तुम्हारे हाथ से निकल जाती।

सूरदास—भैया, इसीलिए न लोग चाहते हैं कि हाकिम धरमात्मा हो, नहीं तो क्या देखते नहीं कि हाकिम लोग बिना डाम-फूल सुअर के बात नहीं करते। उनके सामने खड़े होने का तो हियाब ही नहीं होता, बातें कौन करता। इसीलिए तो मनाते हैं कि हमारे राजों-महाराजों का राज होता, जो हमारा दुःख-दर्द सुनते। सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायेगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन यहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो प्रचार बढ़ जायेगा, कसवियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़ कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे, और अपने बुरे आचरण अपने गाँव में फैलायेंगे। दिहातों की लड़कियाँ, बहुएँ मजूरी करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धर्म बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहाँ हो जायेगी। भगवान न करे, यहाँ वह रौनक हो। सरकार, मुझे इस कुकरम और अधरम से बचायें। यह सारा पाप मेरे सिर पड़ेगा।

नायक राम—दीनबन्धु, सूरदास बहुत पक्की बात कहता है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आपके अकबाल से सभी

जगह घूम आया हूँ, जजमान लोग बुलाते रहते हैं। जहाँ-जहाँ कल-कारखाने हैं, वहाँ यही हाल देखा है।

राजा साहब—क्या ये बुराइयाँ तीर्थ-स्थानों में नहीं हैं?

सूरदास—सरकार, उनका सुधार भी तो बड़े आदमियों ही के हाथ में है। जहाँ बुरी बातें पहले ही से हैं, वहाँ से हटाने के बदले उन्हें और फैलाना तो ठीक नहीं है।

राजा साहब—ठीक कहते तो सूरदास, बहुत ठीक कहते हो। तुम जीते, मैं हार गया। तुम्हारी बातों से चित प्रसन्न हो गया। कभी शहर आना, तो मेरे यहाँ अवश्य आना। जिस वक्त मैंने साहब से इस जमीन को तय करा देने का वायदा किया था, ये बातें मेरे ध्यान में न आई थीं। अब तुम निश्चिन्त हो जाओ, मैं साहब से कह दूँगा, सूरदास अपनी जमीन नहीं देता। नायक राम, देखो सूरदास को किसी बात की तकलीफ न होने पाए, अब मैं चलता हूँ। यह लो सूरदास, यह तुम्हारी इतनी दूर आने की मजूरी है।

यह कहकर उन्होंने एक रुपया सूरदास के हाथ में रखा, और चल दिये।

नायक राम ने कहा—सूरदास आज राजा साहब भी तुम्हारी खोपड़ी को मान गये।

अभ्यास

१. ताहिर, राजा साहब तथा सूरदास, इनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२. भिखारी तो सूरदास था, फिर जमींदार को भिखारी क्यों कहा गया है?

३. सूरदास की ज़मीन पर कारखाना बनने से वहाँ के लोगों को लाभ भी होते, हानियाँ भी। लाभ क्या होते और हानियाँ क्या? खोल कर लिखिए।

४. क्या आपने मुंशी प्रेमचन्द का वह उपन्यास पढ़ा है जिससे यह अंश लिया है? उपन्यास आपको कैसा लगा?

———

श्री भास्कर मित्र

श्री भास्कर मित्र एक अनजाने और अप्रसिद्ध लेखक हैं। इनकी लिखी कोई रचना भी मेरी दृष्टि से नहीं गुज़री। हाँ, पर्वतारोहण सम्बन्धी इनका प्रस्तुत लेख मैंने एक हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका में पढ़ा था। इसकी भाषा और विषय दोनों मुझे अपने तरुण पाठकों की दृष्टि से बड़े रोचक लगे और मैंने इसे अपने इस संकलन में शामिल करने का निश्चय किया। आप इस लेख में नए भारत के नए उत्साह और नई उमंगों की एक झलक देखेंगे। आज हमारा देश पराधीनता के कारागार से निकल कर स्वतन्त्र देशों के परिवार में अपना उचित गौरवपूर्ण स्थान बना रहा है। हर क्षेत्र में हमें उन्नति करनी है। साहस के ऐसे कामों के लिए भी इस देश के साहसी तरुणों को आगे आना है। इस वर्ष (मई, १९६२) में भी एक भारतीय अभियान दल ऐवरेस्ट की चौटी सर करने के लिए गया है। ईश्वर करे उसे अपना लक्ष्य पाने में सफलता मिले।

भास्कर मित्र

पर्वतारोहण के क्षेत्र में नए युग का सूत्रपात

हिमालय पर्वतमाला की सर्वोच्च चोटी एवरेस्ट (२६०२८) फुट) है। सन् १८५२ में सर्वप्रथम इसे चोटी नं० १५ के नाम से सम्बोधित और दुनियाँ की सब से ऊँची चोटी सिद्ध किया गया। उस समय इसकी ऊँचाई २६००२ फुट निर्धारित की गई। बाद में भारत के तत्कालीन भूखोज उच्चाधिकारी सर जार्ज एवरेस्ट की स्मृति में इसे एवरेस्ट चोटी का नाम दिया गया। १६४६ से १६५४ तक भारत के भूखोज विभाग ने जाँच-पड़ताल करके इस चोटी की ऊँचाई २६०२८ फुट घोषित की, जिसमें कि १० फुट का हेर-फेर है। नेपाल तथा तिब्बत के लोग इसे चोमोलग्गा (पृथ्वी की देवी माता) कहते आए हैं और उनकी माताएं अपने बच्चों को इस चोटी का परिचय—वह ऊँचा पर्वत जिस के ऊपर से चिड़िया नहीं उड़ सकती, कह कर देती रही हैं।

एवरेस्ट पर सब से पहला दल १६२१ में तिब्बत की ओर से गया था, जिसके प्रमुख सदस्य जार्ज मेलोरी थे।

१९२२ में जनरल ब्रूस एक दूसरा दल लेकर गए जिसके दो सदस्य २७२३६ फ़ुट तक पहुँच सके। अचानक मानसून के आगमन से ७ शेरपाओं की मृत्यु इस में हुई। १९२४ में एक और टुकड़ी गई जिसके दो सदस्य मलोरी तथा इरविन २८००० फुट के ऊपर जाते हुए दिखाई दिए, जहाँ से वे अपनी कहानी कहने भी लौट कर नहीं आए। इसके बाद १९३३, ३४, ३५, ३६ तथा १९३८ में इसी तरह से प्रयत्न किए गए जो असफल रहे।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान एवरेस्ट पर चढ़ाई रुक-सी गई। १९५१ में सब से पहली बार दक्षिण की ओर से एक दल गया। जिसने कि इस ओर से चोटी पर जाने का मार्ग निकाला। हिलेरी भी इस दल में था। १९२१ से १९५१ तक सारे प्रयत्न ब्रिटेन ने किए। १९५२ में स्विटज़रलैंड ने गर्मी और जाड़ों में अपने दलों को भेजा। गर्मी के मौसम के दल के दो सदस्य लैम्बर्ड तथा तेनसिंह २८ मई को २८२१० फुट तक पहुँच सके। १९५३ एवरेस्ट यात्रियों के लिए ऐतिहासिक वर्ष सिद्ध हुआ। कर्नल जान हंट के नेतृत्व में एक ब्रिटिश दल आया जिसके दो सदस्य तेनसिंह और हिलेरी २९ मई, १९५३ को इस चोटी पर पहुँचने में सफल हुए। १९५६ में स्विटज़रलैंड के दल को भी सफलता मिली तथा उनके ४ सदस्य सर्वोच्च चोटी पर पहुँच सके। इस प्रकार एवरेस्ट की चोटी से नीचे की दुनिया को देखने का अवसर अब तक ६ व्यक्तियों को प्राप्त हुआ है।

एवरेस्ट की चोटी पर पहुँचने में लोग सफल तो ज़रूर हुए लेकिन चोटी पर जाने की कठिनाइयाँ कम नहीं हुईं। सब से पहले बर्फ़ के झरने को पार करने की समस्या है। यहाँ की चौड़ी

दरारें, जोकि कभी अधिक फैल जाती हैं या कभी सिकुड़ जाती हैं, पहली मुख्य कठिनाई प्रस्तुत करती हैं।

इस पर कई प्रकार के पुल बनाकर रास्ता निकालना पड़ता है जिस में बड़ी ही सावधानी की आवश्यकता है। फिर बर्फ़ के टूट कर गिरने का खतरा २४ घंटे बना ही रहता है। यह बर्फ़ का झरना एक रोमांचकारी एवं भयावना दृश्य प्रस्तुत करता है। आगे चलकर काँच जैसे चमकते, ऊँचे तथा कड़े बर्फ़ की शिला पर से, जो प्रतिदिन बदलती रहती है, गुज़रना भी एक विकट समस्या बनी रहती है। साउथ कोल (२६,४०० फुट) का निस्तब्ध तथा भयावना वातावरण और अन्त में मौसम की अनिश्चितता हमेशा बनी रहती है। इस प्रकार इस चोटी पर जाने के लिए पर्वतारोहियों को तीन समस्याओं का सामना करना पड़ता है: ऊँचाई की समस्या, मौसम की अनिचितता और अन्त में चढ़ने की कठिनाइयाँ।

ये समस्याएँ देश के नवयुवकों को बराबर चुनौत देती रही हैं।

इन चुनौतियों को भारतीयों ने स्वीकार किया और अक्तूबर १९५९ में निश्चय किया गया कि एक भारतीय टुकड़ी एवरेस्ट पर जाए। इस प्रकार ब्रिटेन तथा स्विटज़रलैंड के साथ भारत ने भी अपना नाम एवरेस्ट पर जाने वाले देशों में जोड़ा।

अभियान की तैयारियाँ आरम्भ हुईं। इतने कम समय में एवरेस्ट पर जाने के लिए तैयारियाँ करनी थीं। अक्तूबर-नवम्बर, १९५९ में एवरेस्ट पूर्व प्रशिक्षण रखा गया, जिसमें सदस्यों को बर्फ़ सम्बन्धी ऊँची शिक्षा दी गई और सदस्यों का चुनाव किया गया। श्री तेनसिंह ने शिक्षा कार्य-भार सम्भाला और अन्त में एवरेस्ट जाने वाले १३ पर्वतारोहियों की टोली चुनी गई

जिसके नेता ब्रिगेडियर ज्ञानसिंह थे। दल के साथ अन्य सदस्य भी थे—जैसे फोटोग्राफर, डाक्टर, मौसम विशेषज्ञ, सिगनल आफ़ीसर तथा सेक्रेटरी। चुनाव के बाद सभी सदस्यों को अभियान का अलग-अलग कार्य-भार सौंपा गया। तीन महीने में देश-विदेश से तरह-तरह की १८ टन सामग्री इकट्ठी करनी थी। साथ ही, भारतवर्ष में ही अधिक वस्तुएँ तैयार हों, इस ओर कदम उठाया गया। बर्फ़ पर लगाए जाने वाले तम्बू, विशेष कपड़े, जूते, भोजन की सामग्री, आक्सीजन दवाइयाँ, स्टोव और अन्य वस्तुएँ एकत्र करनी थीं।

२० फरवरी को सब सदस्य दिल्ली में एकत्र हुए और १० दिन तक अलग-अलग विभागों में तेज़ी से सामान बाँधने का कार्य किया गया। निश्चित समय हम लोग जयनगर के लिए रवाना हुए जोकि बिहार के दरभंगा ज़िले में स्थित है। यहाँ से सारा सामान कुलियों द्वारा ऊपर पहुँचाना था। साधारणतया एक कुली ३० सेर भार उठाता है, अतः सामान ३०-३० सेर के बोझ में बाँधा गया। इतना बड़ा अभियान हिमालय के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। श्री तेनसिंह हम लोगों को विदाई देने आए और उन्होंने शेरपाओं को जो मुख्य शिविर से बर्फ़ के ऊपर अलग-अलग शिविरों में सामान पहुँचाते हैं, समझाया कि यह दल उन्हीं का है, जिसमें उन्हें जी-जान से कार्य करना है।

शहनाइयों की मधुर ध्वनि, मंत्रों के उच्चारण, शक्कर व दही के भोग और आरती के साथ भारतीय परम्परा के अनुसार जयनगर के नागरिकों ने विदाई दी और नेपाल की तराइयों से गुज़रता यह दल अपने ६५० कुलियों, ५२ शेरपाओं के साथ उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ चला।

१५ दिन की यात्रा घाटियों, नदी-नालों, फूलों और सुहावने जंगलों से करते हुए हम लोग नामचे बाज़ार पहुँचे, जोकि शेरपाओं की बस्ती है। हिमालय पर जितने भी अभियान जाते हैं वे इन्हीं शेरपाओं की सहायता लेते हैं। इसके बाद हम लोगों ने पांगबोचे (१३२०० फुट) में अपना पड़ाव डाला। यहाँ पर कुली बदले गए और हमने ऊँचाई के वातावरण से अपने को अभ्यस्त बना लेने के लिए यहाँ शिविर की स्थापना की ऊँचाई के कम हवा वाले वातावरण में रहने योग्य बनने के हेतु हम लोग रोज अलग-अलग दिशा में ऊँचाई पर जाकर नीचे विश्राम के लिये लौटते। इस प्रकार शरीर को अभ्यस्त बनाने से सदस्यों को अत्यन्त लाभ हुआ। यहाँ यह बतला देना उचित होगा कि मनुष्य अपने को ऊँचाई के वातावरण में रहने योग्य केवल २१,००० फुट तक बना सकता है। इस ऊँचाई के बाद शारीरिक इद्रियों और विचार-शक्ति का क्रमशः ह्रास होने लगता है। इसी कारण ऊपर के शिविरों में पर्वतारोही सामान्यतः आक्सीजन यंत्र का प्रयोग करते हैं।

पांगबोचे से ४ दिन की यात्रा के बाद हम लोगों ने अपना मुख्य शिविर 'खुम्बू' ग्लेशियर पर (१८,००० फुट) ६ अप्रैल को स्थापित किया। नामचे बाज़ार से ही हमें बर्फ मिलना शुरू गया था। मुख्य कैम्प से २ टन सामग्री ऊपर के विभिन्न कैम्पों में पहुँचानी थी। यहाँ पहुँचने पर एवरेस्ट चोटी के दर्शन नहीं होते क्योंकि खुम्बू का बर्फ का झरना एक' दीवार की तरह उठता है। एवरेस्ट चोटी पर जाने का रास्ता दाहिने नुपटस की दीवार और बाएँ एवरेस्ट की पश्चिमी घाटी के बीच से गुजरता है। इन्हीं दोनों दीवारों के बीच खुम्बू ग्लेशियर है, जो दक्षिण की ओर से एकमात्र संभव रास्ता है।

एवरेस्ट पर जितने भी अभियान दक्षिण दिशा से हुए, सब को इस बर्फ के झरने पर रास्ता बनाना बड़ा ही कठिन सिद्ध हुआ। हमारा पहला कैम्प इसके बीच में था, दूसरा कैम्प इसके ऊपर था। सब मिला कर इसमें ६०-७० छोटी दरारें हम ने कूद कर पार कीं। १० बड़ी चौड़ी दरारें थीं जिन पर पुल बनाए गए लकड़ी तथा एलुमीनियम की सीढ़ी के। कई स्थानों पर तार तथा रस्सी की सीढ़ियाँ लगाई गईं और रास्ते को सुरक्षित बनाने के लिए कई जगह बर्फ काट कर पाँव रखने की जगह बनाई और रस्सी लगाई गई। रास्ते भर हमने कई रंगों के झण्डे पथप्रदर्शन के हेतु लगाए। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि एक बार रास्ता बनाने से ही कार्य समाप्त नहीं होता, बल्कि रास्ता बिगड़ता रहता है, जिसे रोज ठीक करना पड़ता है जब तक कि पहाड़ से अंतिम व्यक्ति लौट नहीं आता।

इसके बाद तीसरा कैम्प, जोकि हमारा अग्रिम मुख्य कैम्प था (२१,२०० फुट) लगाया गया। इस रास्ते में चारों ओर से बर्फ टूट कर गिरने का खतरा रहता है इस कारण बड़ी ही सावधानी से इन कैम्पों की स्थापना करनी पड़ती है। अग्रिम मुख्य कैम्प में आगे के कैम्पों में काम आने वाली आवश्यक सामग्री इकट्ठी की गई और ऊपर से आए हुए थके सदस्यों के आराम की सुविधा की व्यवस्था की गई।

चौथे कैम्प की स्थापना लोटसे ग्लेशियर के नीचे की। अब समस्या थी ग्लेशियर को पार करने की, जोकि पक्की बर्फ का बना हुआ है। इस पर चलने के लिए बर्फ काटना पड़ता है और सहारा लेने के लिए रस्सी बाँधनी होती है। यहाँ हमें पिछले स्विस दल द्वारा प्रयोग की गई रस्सी भी मिली जिसका हमने उचित प्रयोग किया।

छठा कैम्प ६ मई को साउथ कोल (२६,४०० फुट) पर बनाया केवल कैम्प की स्थापना से ही कार्य नहीं चलता, वहाँ पर उस कैम्प में तथा ऊपर के कैम्प में आवश्यक सामग्री—जैसे ऑक्सीजन यंत्र, तम्बू, भोजन तथा स्टोव—पहुँचानी पड़ती है, जिसमें समय लगता है। इस कैम्प तक रास्ता बन जाने से सब को खुशी हुई, क्योंकि यह स्थान चोटी पर जाने का अन्तिम मुख्य केन्द्र होता है। यहाँ की हवा की गति और ठण्डक को सहन करना आसान बात नहीं है। ब्रिटिश तथा स्विस दलों द्वारा छोड़ा सामान हमें मिला जिसमें एक स्विस पर्वतारोही की डायरी भी थी। इस डायरी में १०० फ्रैंक के नोट तथा एक सुन्दर युवती का फोटो मिला। सदस्यों की खुशी का पारावार न रहा जबकि इस फोटो के पीछे उसका पता भी मिल गया।

धीरे-धीरे शेरपाओं के दल जाने लगे और हमने इसमें शीघ्र ही सामान पहुँचाने की व्यवस्था की। परन्तु बीच में मौसम खराब हो जाने की वजह से रास्ता बहुत खतरनाक हो गया जिससे सामान इकट्ठा करने में कुछ विलम्ब हुआ। हमें यह मालूम था कि ब्रिटिश दल ने २६ मई तथा स्विस दल ने २३-२४ मई को सफलता प्राप्त की थी। हम लोग भी हिमालय पर मानसूनी वातावरण के आने के पूर्व की स्थिर और शांत जलवायु की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं कैम्प में अपने स्लीपिंग बैग में बैठा रेडियो की खबरें सुन रहा था। अचानक अंडमान टापू में मानसून आने का समाचार प्राप्त हुआ। सबों को चिन्ता हुई। समय बहुत कीमती था। चोटी पर जाने के लिए तीन-तीन सदस्यों की दो टोलियाँ बनाई गईं। पहली टोली २२ तारीख को ३ नं० कैम्प से रवाना हुई और ये लोग २३ तारीख को साउथ कोल पहुँचे। यहाँ से दूसरे दिन यह टुकड़ी अपने अन्तिम पड़ाव

सातवें कैंप (२७,६०० फुट) के लिए ६ शेरपाओं के साथ ऑक्सीज़न का प्रयोग करते निकली। शेरपाओं ने सामान पहुँचा कर दूसरे दिन की सफलता की प्रार्थना की और नीचे चल पड़े।

२४ मई को मौसम ठीक था और यह टुकड़ी दूसरे दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब कि इन्हें अपनी अन्तिम मंज़िल तय करनी थी। नींद, भूख, ऊँचाई पर कम हो जाती है। कल यह टुकड़ी एवरेस्ट के शिखर पर पहुँचेगी इस बात से उसके सदस्यों में बहुत उत्तेजना तथा उत्सुकता बनी थी, इसी लिए नींद न आने के बावजूद उन्होंने नींद की गोली खाने से इंकार कर दिया कि कहीं निश्चित समय पर जाना चूक न जाय। छोटे-से तम्बू में तीन व्यक्ति सुबह के ४ बजे की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब ४ बजे नाश्ता कर चुकने पर अपना सामान तथा ऑक्सीजन यन्त्र ठीक कर वे लोग जूते पहन रहे थे, तब तम्बू के बाहर दृष्टि डालने पर पता चला की हवा तेज़ी से चल रही है। चारों ओर बर्फ उठ रहा था। ऐसे में निकलना असम्भव सा प्रतीत हुआ। ७ बजे तक मौसम ठीक होने का इन्तजार करते रहे परन्तु जब मौसम अनुकूल होता नहीं दिखाई दिया तो उन्होंने आगे चलने तथा एक और प्रयत्न करने की ठानी। हवा तेज़ चल रही थी और बर्फ उड़-उड़ कर उनके मुँह पर आ रहा था, फिर भी आगे बढ़ना दुष्कर नहीं था। उनके ऑक्सीजन यन्त्रों में बर्फ घुसने लगा, जिसे ठीक करते वे आगे बढ़ते रहे। किन्तु जब वे मुख्य पर्वतपृष्ठ पर आए तब तो हवा की गति ने, उड़ते बर्फ ने उन पर सीधा वार किया, उनके चश्मों में भी बर्फ घुस गया और उन्हें आगे कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। एक-एक कदम आगे रखना दूभर प्रतीत हो रहा था। यहाँ २८३०० फुट की ऊँचाई पर १५ मिनट इंतजार किया कि शायद इस बार

मौसम उनका साथ दे पर यह व्यर्थ सिद्ध हुआ। तीनों सद
यह जानते हुए भी कि इन परिस्थितियों में आगे कदम रखना
मौत के मुँह में जाना होगा—'वापस लौटो' मुँह से न निकाल
सके। केवल इशारों से वापस लौटने का निर्णय किया और २
घण्टे ऐसे भयंकर वातावरण में रहने के बाद शाम को ७
पूरे थके ये लोग साउथ कोल कैंप में लौटे।

दूसरी चोटी की टुकड़ी साउथ कोल पर इंतजार क
थी। मौसम प्रति घण्टे खराब होने लगा। बर्फ चारों ओर
रहा था, हवा साँय-साँय करती बह रही थी। एक तूफ़ान-सा
गया था। प्रति घण्टे यह मौसम खराब होता गया और
टुकड़ी का आगे जाना भी असम्भव हो गया। एक दिन
इंतजार किया। दूसरे दिन भी १० बजे तक रास्ता देखा
तूफानी हवाएँ कम नहीं हुईं, बर्फ के बादल उठने कम न हु
और न ही बर्फ गिरना बन्द हुआ। इस तरह यह टुकड़ी भी
नीचे लौट पड़ी। ब्रिगेडियर ज्ञानसिंह ने सबों को अलग-अलग
कैंपों से वापस आने का आदेश दिया और इस तरह २६ मई
को सभी सदस्य तथा शेरपा मुख्य कैम्प में एकत्र हो गए। ऐसे
मौसम में वापस आना भी कठिन था और काफ़ी सामान
वहीं पर छोड़ना पड़ा। सही सलामत लौट जाना ही समस्या
फिर सामग्री का क्या मूल्य !

भारतवर्ष की टुकड़ी द्वारा एवरेस्ट की चोटी पर चढ़
पहला प्रयत्न पूरी तरह सफल नहीं हो पाया। वास्तव में भारतीय
दल के सदस्य हिमालय पर विजय प्राप्त करने नहीं गए
वरन् हम लोग एक साँस्कृतिक तीर्थ-यात्रा पर गए थे। हिमालय
पर प्रत्येक क्षण ने हमें भूले हुए अतीत के साथ मिलाया। इस
यात्रा का मेरी समझ से सब में बड़ा योगदान यह रहा कि

भारतवर्ष में नवयुवकों व नवयुवतियों में हिमालय का जीता-जागता चित्र सामने आया और कइयों के मन में यह अभिलाषा जाग उठी के वे भी हिमालय के अनेक सुन्दर लेकिन दुर्गम स्थानों की यात्रा करें। कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि इस अभियान ने भारत में पर्वतारोहण के क्षेत्र में एक नया युग आरम्भ किया है। सागर, जबलपुर, इलाहाबाद तथा अन्य विश्वविद्यालयों में पर्वतारोही दल इन्हीं दिनों स्थापित किए गए। निश्चय ही इन में कई भावी तेनसिंह व हिलेरी होंगे जो एवरेस्ट पर तिरंगा फहराएँगे—वह दिन भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय होगा।

अभ्यास

1. एवरेस्ट पर भारतीय पर्वतारोही दल के पहले असफल अभियान का विवरण लिखिए।
2. तेनसिंह कौन था? इस लेख में उसका उल्लेख क्यों आया है?

श्री सुदर्शन

[जन्म—१८९६ ई०]

आप पश्चिमी पाकिस्तान के नगर स्यालकोट के रहने वाले हैं। देश-विभाजन के बाद आप बम्बई चले गए। आपने बी० ए० तक शिक्षा पाई है। मुं० प्रेमचन्द की तरह आपने भी उर्दू-लेखक के रूप में प्रतिष्ठित होने के बाद ही हिन्दी में प्रवेश किया। प्रेमचन्दजी की तरह ही आपको भी कहानी-क्षेत्र में अपूर्व सफलता और कीर्ति मिली। फिर भी प्रेमचन्द तथा सुदर्शन दोनों की कला के आदर्श एक समान नहीं। मुं० प्रेमचन्द की रचनाओं में जीवन की वास्तविकता को प्रमुखता मिली है, श्री सुदर्शन भाग्यवादी और आदर्शवादी कलाकार हैं।

श्री सुदर्शन की कहानियों में रोचकता और कौतूहल का अंश बड़ा प्रबल होता है। पाठक एक बार कहानी शुरु करके समाप्त किये बिना नहीं रह पाता। भाषा आपकी बड़ी चुस्त और मुहावरेदार होती है। चरित्र चित्रण में आप पात्र के मन की गहराइयों को छू लेते हैं। आज-कल आप चित्र-पट संसार में हैं। आपकी कुल कहानियां काफी सफल रही हैं। आपके द्वारा लिखी गई कहानियों की संख्या भी लगभग २०० है। आपके प्रसिद्ध कथा-संग्रह हैं :

सुदर्शन-सुमन, पुष्पलता, सुदर्शन-सुधा और तीर्थ-यात्रा।

श्री सुदर्शन

हार की जीत

माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लहलहाते खेत देख कर जो आनन्द आता है वहीं आनन्द बाबा भारती को अपना घोड़ा देख कर आता था। भगवद्भजन से जो समय बचता, वह घोड़े के अर्पण हो जाता। यह घोड़ा बड़ा सुन्दर था और बड़ा बलवान। इसके जोड़ का घोड़ा सारे इलाके में न था। बाबा भारती उसे सुलतान कह कर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते और देख-देख कर प्रसन्न होते थे। ऐसी लगन, ऐसे आदर, ऐसे स्नेह से कोई सच्चा प्रेमी अपने साजन को भी न चाहता होगा। उन्होंने अपना सब कुछ छोड़ दिया था—रुपया, माल, असबाब, ज़मीन, यहाँ तक कि उन्हें नागरिक जीवन से भी घृणा थी। अब एक गाँव से बाहर छोटे-से मन्दिर में रहते और भगवान का भजन करते थे—परन्तु सुलतान से बिछुड़ने की वेदना उनके लिए असह्य थी। मैं इसके बिना नहीं रह सकूँगा, उन्हें ऐसी भ्रान्ति सी हो गई थी। वे उस की चाल पर लट्टू थे।

कहते, ऐसे चलना है जैसे मोर घन-घटा को देख कर नाच रहा हो। गाँवों के लोग इस मोह-माया को देख कर चकित थे, कभी-कभी कनखियों से इशारे भी करते थे, परन्तु बाबा भारती को इसकी परवाह न थी। जब तक सन्ध्या-समय सुलतान पर चढ़ कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते उन्हें चैन न आती।

खंगसिंह उस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुन कर काँपते थे। होते-होते सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसे देखने के लिए अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा—"खंगसिंह क्या हाल है ?" खंगसिंह ने सिर झुका कर उत्तर दिया—"आप की दया है।"

"कहो, इधर कैसे आ गये ?"

"सुलतान की चाह खींच लाई।"

"विचित्र जानवर है। देखोगे, तो प्रसन्न हो जाओगे।"

"मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

"उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी।"

"कहते हैं, देखने में भी बड़ा सुन्दर है।"

"क्या कहना! जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अंकित हो जाती है।"

"बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो गया हूँ।"

बाबा और खंगसिंह दोनों अस्तबल में पहुँचे। बाबा ने घोड़ा दिखाया घमण्ड से। खंगसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य से। उसने सहस्रों घोड़े देखे थे; परन्तु ऐसा बाँका घोड़ा उसकी आँखों से कभी न गुज़रा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा

खड्गसिंह के पास होना चाहिए था। इस साधु को ऐसी चीज़ों से क्या मतलब ? कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके पश्चात् हृदय में हलचल होने लगी, बालकों की सी अधीरता से बोला—"परन्तु बाबा जी, इसकी चाल न देखी तो क्या देखा ?"

बाबा जी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए उनका हृदय भी अधीर हो गया। घोड़े को खोल कर बाहर लाये और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उचक कर सवार हो गये। घोड़ा वायु-वेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर, उसकी गति देख कर, खड्गसिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह डाकू था और जो वस्तु उसे पसन्द आ जाती उस पर अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहुबल था, रुपया था और आदमी भी थे। जाते-जाते बोला—"बाबा जी ! मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा।"

बाबा भारती डर गये। अब उन्हें रात को नींद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रतिक्षण खड्गसिंह का भय लगा रहता। परन्तु कई मास बीत गये और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ लापरवाह हो गये, और इस भय को स्वप्न के भय की नाईं मिथ्या समझने लगे।

संध्या का समय था। बाबा भारती सुलतान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते; कभी रंग को और मन में फूले न समाते थे।

सहसा एक ओर से आवाज़ आई—"ओ बाबा! इस कंगले की भी बात सुनते जाना।"

आवाज़ में करुणा थी। बाबा ने घोड़े को थाम लिया। देखा, एक अपाहिज वृक्ष की छाया में पड़ा कराह रहा है। बोले—"क्यों, तुम्हें क्या कष्ट है?"

अपाहिज ने हाथ जोड़ कर कहा—"बाबा, मैं दुखिया हूँ। मुझ पर दया करो। टाँमाँवाला यहाँ से तीन मील है, मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढ़ा लो; परमात्मा तुम्हारा भला करेगा।"

"वहाँ तुम्हारा कौन है?"

"दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूँ।"

बाबा भारती ने घोड़े से उत्तर कर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया, और स्वयं उसकी लगाम पकड़ कर धीरे-धीरे चलने लगा।

सहसा उन्हें एक झटका-सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तन कर बैठा है और घोड़े को दौड़ाये लिए जा रहा है तो उनके मुख से भय, विस्मय और निराशा से मिली हुई चीख निकल गई। यह अपाहिज खड्गसिंह डाकू था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे, और इसके पश्चात् कुछ निश्चय करके पूरे बल से चिल्ला कर बोले—"जरा ठहर जाओ।"

खड्गसिंह ने यह आवाज़ सुन कर घोड़ा रोक लिया, और उसकी गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"बाबा जी यह घोड़ा अब न दूँगा।"

"परन्तु एक बात सुनते जाओ।"

खंगसिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जैसे बकरा कसाई की ओर देखता है, और कहा—"यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका है। मैं तुम से इसे वापस करने के लिए न कहूँगा। परन्तु खंगसिंह, केवल एक प्रार्थना करता हूँ उसे अस्वीकार न करना; नहीं तो मेरा दिल टूट जायेगा।"

"बाबा जी आज्ञा कीजिए। मैं आपका दास हूँ; केवल यह घोड़ा न दूँगा।"

"अब घोड़े का नाम न लो। मैं तुम से इसके विषय में कुछ न कहूँगा। मेरी प्रार्थना है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।"

खंगसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि मुझे इस घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा, परन्तु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खंगसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा; परन्तु कुछ समझ न सका। हार कर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दी और पूछा—"बाबा जी, इसमें आपको क्या डर है?"

बाबा भारती ने उत्तर दिया—"लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।"

और यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ दिया, जैसे उनका उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा भारती चले गये; परन्तु उनके शब्द खंगसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था, कैसे उच्च विचार हैं? कैसा पवित्र भाव है? उन्हें इस घोड़े से प्रेम था। इसे देख कर

उनका मुख फूल की नांई खिल जाता था। कहते थे, इसके बिना मैं न रह सकूँगा। इसकी रखवाली में वह कई रातें सोये नहीं। भजन-भक्ति के बदले रखवाली करते रहे। परन्तु आज उनके मुख पर चिन्ता की रेखा तक न देख पड़ती थी। उन्हें केवल यह ख्याल था कि कहीं लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें। उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया। ऐसा मनुष्य मनुष्य नहीं देवता है।

रात्री के अन्धकार में खंगसिंह बाबा भारती के मन्दिर में पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। थोड़ी दूर गाँवों के कुत्ते भौंकते थे। मन्दिर के अन्दर कोई शब्द सुनाई न देता था। खंगसिह सुलतान की बाग पकड़े हुए था। वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक तक पहुँचा। फाटक किसी वियोगी की आँखों की तरह चौपट खुला पड़ा था। किसी समय यहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे; परन्तु आज उन्हें किसी चोरी या किसी डाके का भय न था। हानि ने उन्हें हानि की ओर से बेपरवाह कर दिया था। खंगसिंह ने आगे बढ़कर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया, और बाहर निकल कर सावधानी से फाटक बन्द किया। इस समय उसकी आँखों में पश्चाताप के आँसू थे।

अन्धकार में रात्री ने तीसरा पहर समाप्त किया, और चौथा पहर आरम्भ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठण्डे जल से स्नान किया। उसके पश्चात् इस प्रकार जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर मुड़े; परन्तु फाटक पर पहुँच कर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई, साथ ही घोर निराशा ने पाँव को मन-मन भर का भारी बना दिया। वे वहीं रुक गये।

घोड़े ने स्वाभाविक मेधा से अपने स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया और वह जोर से हिनहिनाया।

बाबा भारती दौड़ते हुए अन्दर घुसे और अपने घोड़े के गले से लिपट कर इस प्रकार रोने लगे, जैसे बिछुड़ा हुआ पिता चिर-काल के पश्चात् पुत्र से मिल कर रोता है। बार-बार उस की पीठ पर हाथ फेरते थे, बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते थे और कहते थे—अब कोई गरीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।

थोड़ी देर के बाद जब वे अस्तबल से बाहर निकले, तो उन की आँखों से आँसू बह रहे थे। ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी स्थान पर गिर रहे थे, जहाँ बाहर निकलने के बाद खंगसिंह खड़ा होकर रोया था।

दोनों के आँसुओं का उस भूमि की मिट्टी पर परस्पर मेल हो गया।

अभ्यास

१. इस कहानी को अपने शब्दों में लिखिए तथा सुनाइये।

२. इस कहानी का शीर्षक 'हार की जीत' क्यों है?

३. यह कहानी आप को कैसी लगी? अपने विचार प्रकट कीजिए।

४. बाबा भारती ने खंगसिंह को यह क्यों कहा था कि अपाहिज बन कर घोड़ा छीन लेने की इस घटना का ज़िक्र किसी से न करना?

———

श्री गुलाब राय एम० ए०

[जन्म—१८८७ ई० मृत्यु १९६३ ऐप्रिल]

दर्शन शास्त्र (Philosophy) में एम० ए० और कानून में L.L.B. तक की उच्च शिक्षा प्राप्त करके एक रियासत में 'दीवान' और 'चीफ जज' के रूप में उच्च पदों पर काम करके श्री गुलाब राय जी ने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। अपने गम्भीर अध्ययन तथा निष्पक्ष न्याय-वितरण क्षमता के कारण हिन्दी-आलोचना क्षेत्र में आपकी साधना ने प्रशंसनीय श्रीवृद्धि की।

आपके निबन्धों ने हिन्दी-साहित्य के इस अंग को काफी पुष्ट किया। आपके निबन्धों में विज्ञान, हास्य-व्यंग्य, दार्शनिक विवेचन और हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों की समीक्षा के गुणों के कारण उनकी बड़ी प्रशंसा हुई है। दर्शन सम्बन्धी आपकी कुछ रचनाएँ हैं, कर्तव्य शास्त्र, तर्क शास्त्र (२ भाग), 'मन की बातें' तथा 'पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास'।

आलोचना में आपने 'पूर्व' और 'पश्चिम' का सुन्दर समन्वय दिखाया है। उस क्षेत्र में उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'काव्य के रूप', 'हिन्दी काव्य-विमर्श', 'साहित्य-समीक्षा', 'हिन्दी नाट्य-विमर्श', 'सिद्धांत और अध्ययन'।

कुछ समय तक इन्होंने आगरे से प्रकाशित होने वाली मासिक-पत्र 'साहित्य सन्देश' का सम्पादन भी किया है। आपकी साहित्य साधना इस आयु में भी सुचारु रूप से चल रही है। 'मेरी असफलताएं' और 'मेरे निबंध' उनकी दो अति रोचक रचनाएँ हैं।

गुलाबराय

मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ

'बद अच्छा बदनाम बुरा', कवि, लेखक और दार्शनिक प्राय: इस बात के लिये बदनाम हैं कि वे कल्पना के आकाश में विचरा करते हैं; उनके पैर चाहे जमीन पर रहें, किन्तु निगाह आसमान की ओर रहती है और वे झोंपड़ियों में रह कर भी ख्वाब महलों का देखा करते हैं। किन्तु सब लोग एक से नहीं होते। कुछ लोग तो अवश्य अपने चरित्र से दुनिया की इस धारणा को सार्थक करते रहते हैं। कोई अकारण बदनाम नहीं होता। ऐसे लोग दीन दुनिया से बेखबर रह कर तीन लोक से न्यारी अपनी मथुरा बसाया करते हैं और 'अकबर' के शब्दों में सारी उम्र होटलों में गुज़ार कर (बढ़िया होटलों में नहीं) मरने को अस्पताल चले जाते हैं। इनमें से भी कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जिनका अन्त: (घर) और वाह्य (सामाजिक जीवन) एक सा है। उनको न बच्चों की टें-टें पें-पें से काम और न दुनिया के

करुण-क्रन्दन से मतलब क्वेटा का भूकम्प हो और चाहे बंगाल का दुर्भिक्ष, राष्ट्र बिगड़े या बने उनको अपने सोटे-लंगोटे में मस्त पड़े रहना ; न वे ऊधो के लेन में रहते हैं और न माधो के देन में। वे अपनी कल्पना के कल्पतरु के नीचे बैठ कर अपनी विश्वामित्री सृष्टि रचा करते हैं ; सो भी जब मौज आई, नहीं तो वे कल्पना का भी कष्ट नहीं करते।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनको घर की तो परवाह नहीं, बच्चों के लिए दवा हो या न हो, घर में चूहे ही नहीं आदमी भी एकादशी करते हों, स्त्री बेचारी नैयायिकों के अनुमान का प्रत्यक्ष आधार-स्वरूप आर्द्रेन्धन (गीले ईन्धन) और अग्नि के संयोग से उत्पन्न धुएँ से अग्निहोत्री ऋषियों की भाँति आरक्त-लोचन (धुएँ के अतिरिक्त क्रोध से भी) बनी रहती हो किन्तु उन्हें सभाओं के संचालन और नेतापन से काम। घर में उनके पैर, जाल में पड़ी हुई मछली की भाँति, फटफटाया करते हैं किन्तु बलिहारी कण्ट्रोल की कि उनको भी आटे-दाल का भाव आलंकारिक रूप से ही नहीं बल्कि उससे शब्दार्थ में भी मालूम पड़ गया है। मेरे एक दार्शनिक मित्र (श्री पी. एम. भम्भानी) उस रोज़ शक्कर का पारिवारिक अर्थशास्त्र बतला रहे थे। मुझे उन्हें चीनी की समस्या से विचलित होते देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—भाई, यह कण्ट्रोल मुझे भी आसमान से नीचे उतार लाया और मैं भी अब नौन-तेल-लकड़ी के चक्कर में पड़ गया हूँ।

मैं उपर्युक्त गृहत्यागी वर्ग की सीमा को तो स्पर्श कर लेता हूँ किन्तु पारिवारिकता के क्षेत्र से बाहर नहीं आ सका हूँ। पारिवारिक जीवन में समन्वय करना कभी-कभी बड़ी समस्या हो जाता है। ऐसा हाल प्रायः बहुत-से लेखकों का होगा। परिवार में जन्म लेकर उसकी अपेक्षा नहीं कर सकता। कुछ लोग परिवार

में जन्म लेते हैं, किन्तु परिवार बनाने का पाप अपने ऊपर नहीं लेते। ऐसे, यदि वे अगला जन्म धारण करेंगे तो टेस्ट-ट्यूब बेबीज़ के रूप में विज्ञान और समाजशास्त्र निष्पारिवारिकता की ओर जा रहा है, किन्तु हम लोग भारतीय संस्कृति के बन्धन में पले हैं, पारिवारिकता के बन्धन से बाहर नहीं जा सकते— उस में गुण भी हैं और दोष भी। शुद्ध दूध में भी तो ६० प्रतिशत से अधिक पानी होता है। उस पानी के बिना शायद वह दूध हज़म भी न हो। पाप-पुण्य, दिन-रात की भाँति पारिवारिक जीवन भी गुण-दोषमय है। दोषों की मैं कमी अवश्य चाहता हूँ किन्तु मैं उस वैद्य की भाँति नहीं हूँ जो ऐसी दवा दे जिसमें न मर्ज़ रहे और न मरीज़। अस्तु, इसी पारिवारिकता-परायण और सामाजिकता के लिए मनोरथशील कछुए-से मुक्त उभयजीवी प्राणी की दैनिकी का एक पृष्ठ पढ़ने की पाठकगण कृपा करेंगे।

तारीख २१ सितम्बर सन् ४५ (केवल यही पृष्ठ लिखकर मैं घबड़ा गया था, वास्तविकता की पुनरावृत्ति मैं नहीं चाहता हूँ)।

प्रातः काल ४ बजे (लिनलिथगो टायम से) उठा। अपनी 'सिद्धान्त और अध्ययन' शीर्षक पुस्तक के लिए ६ बजे तक पढ़ा। (मैं उन लोगों में से हूँ जो सिवा अपने निजी निबन्धों के बिना पढ़े कुछ नहीं लिख सकते। वास्तव में मेरे लेख में एक-तिहाई दूसरे से पढ़ा हुआ होता है, एक बटा छह उसके आधार से स्वयं प्रकाशित और ध्वनित विचार होते हैं, एक बटा छह सप्रयत्न सोचे हुए विचार रहते हैं और एक-तिहाई मलाई के लड्डू को बर्फी बना कर चोरी को छिपाने वाली अभिव्यक्ति की कला रहती है।) छह से सवा छह तक कागज़, कलम, सियाही जुटाने में खर्च किया। आठ बजे तक मध्ये-मध्ये आचमनीयम तथा पुँगीफल खण्डों के विराम चिन्हों सहित लिखा।

६ बजे तैयार होकर प्रूफ की तलाश में प्रेस गया; अक्षर भगवान को छछिया-भर छाछ की बजाय बेलन के बल, जगत् की कालिमा, मिला कर उँगलियों पर नाच नचाने वाले कम्पोज़िटर देव की अनुपस्थिति में 'कापी' में काँट-छाँट की और प्रूफ में भी घटाया-बढ़ाया। इस प्रकार उनकी झूँझल का सामान कर बाज़ार गया, वहाँ पहुँचते ही 'शेखर के अन्तिम दिन' की भाँति घर के सारे अभावों का ध्यान आ गया। किन्तु बाज़ार में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ सब अभावों की एक साथ पूर्ति हो जाय। अगर अच्छा साबुन राजामण्डी में मिलता है तो अच्छा मसाला रावतवाड़े में। किन्तु वहाँ भैंस के लिए भुस का अभाव था। बाल-बच्चों की दवा के बाद अगर किसी वस्तु को मुख्यता मिलती है तो भैंस के भुस को, क्योंकि उसके बिना काले अक्षरों की सृष्टि नहीं हो सकती, मेरी काली भैंस धवल दुग्ध का ही सृजन नहीं करती वरन् उसके सदृश ही धवल यश के सृजन में भी सहायक होती है। इस गुण के होते हुए भी वह मेरे जीवन की बड़ी समस्या हो गई है। मैं हर साल उसके लिए अपने घर के पास के खेत में चरी पैदा कर लेता था। इस साल वर्षा के होते हुए भी मेरे यहाँ चरी नहीं हुई—'भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या, न च पौरुषं'। मेरे पड़ोसी की ईर्ष्याजनक लहलहाती खेती है। मेरी भैंस को उस खेती से ईर्ष्या नहीं वरन् सच्चा अनुराग है, वह सच्चे भक्तों की भाँति गृहबन्धनों को तोड़ कर अपने प्रेम का आक्रमण कर देती है। जितना वे उसे भगाते हैं उतनी ही उनकी चरी रौंधी जाती है और जितनी उनकी चरी रौंधी जाती है उससे अधिक उनका दिल दुखता है। मालूम नहीं इसको अलंकार शास्त्र में असंगति कहते हैं या और कुछ। घाव लक्ष्मण जी के हृदय में था और पीर रघुवीर के हृदय में, वैसे ही रौंधी चरी जाती थी और दुःख मेरे पड़ोसी महोदय के हृदय

में होता था। मैं संघर्ष में पड़ता नहीं, किन्तु कभी-कभी संघर्ष बड़ा तीव्र हो जाता है। बच्चों के दूध और पड़ोसी के साथ दूभावना में ऐसा अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है जो शायद प्रसाद के नाटकों में भी सहज ही न मिले। खैर, आजकल उसका दूध कम हो जाने पर भी और अपने मित्रों को छाछ भी न पिला सकने की विवशता की झूँझल के होते हुए भी (सुरराज इन्द्र की तरह मुझे भी मठा दुर्लभ हो गया है। (तक्रं शुक्रस्य दुर्लभम्:) उसके लिए भुस लाना अनिवार्य हो जाता है। कहाँ साधारणीकरण और अभिव्यंजनावाद की चर्चा और कहाँ भुस का भाव, भुस खरीद कर मुझे भी गधे के पीछे ऐसे ही चलना पड़ता है जैसे बहुत से लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं। कभी-कभी गधे के साथ कदम मिलाये रखना कठिन हो जाता है, लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनन्द आता जितना कि पलायनवादी को जीवन से भगने में। बहुत से लोग तो जीवन से छुट्टी पाने के लिये कला का अनुसरण करते हैं किन्तु मैं कला से छुट्टी पाने के लिये जीवन का अनुसरण करता हूँ—कभी नाव लढ़ी पर तो कभी लढ़ी नाव पर। ११ बजे बाज़ार हाट से भैंस के लिये भुस और अपने लिये शाक-भाजी लेकर लौटा, स्नान किया, भोजन किया, और करीब करीब १२॥ बजे कालिज पहुँचा। लड़कों को पढ़ाया, लाइब्रेरी से कुछ पुस्तकें लीं और फिर साहित्य संदेश के दफ्तर आया। वहाँ जलपान किया, जल पीकर पान खाया। कभी-कभी रूढ़ि अर्थ में भी जलपान करता हूँ और कभी शुद्ध अभिधार्थ में जल का पान करता हूँ। कम्पोजिटर की शिकायत सुनी, दीन शराबी की सी तोबा की, अब नहीं घटाऊँगा-बढ़ाऊँगा। आप लोगों को कष्ट अवश्य होता है। उनकी अनुनय-विनय की 'अबलौं नसानी अब न नसैहों, किन्तु क्या करूँ आदत से मजबूर हूँ। बनियों

की पाछिल बुद्धि होती है लिखने के बाद कहीं प्रूफ पढ़ने पर ही शोधन सूझते हैं। प्रूफ पढ़े। कम्पोज़िटरों से बढ़ कर स्वयं झूँझल का शिकार बना। ४ बजे घर लौटा। अभावों की नई गाथा सुनी; घर की भूली हुई समस्याएँ सामने आई; खूँटा उखाड़ कर भुस भाग गई थी, उसकी साँकल किसी ने उतार ली है; क्या फिर दुबारा बाज़ार जाऊँ? इसी संकल्प विकल्प में दु… पान किया। रात्रि में जल के मार्जन और आचमन से निद्रा देवी का जो तिरस्कार किया था, उस का प्रायश्चित किया उठकर भाई को पत्र लिखा। रमणीयता के सम्बन्ध में हमारे यहाँ कहा गया है कि 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:' अर्थात् जो क्षण-क्षण में नवीनता धारण करे वही रमणीयता का रूप है। मेरी घरेलू समस्याएं भी क्षण-क्षण में नवीनता धारण करती रहती हैं। वे मेरी कल्पना से भी चार कदम आगे रहती हैं। फिर मैं उनको सुन्दर क्यों न कहूँ। शास्त्रीय भाषा के बाहर मैं नहीं जा सकता। आज किसी ने भैंस की जंजीर चुरा ली तो कल पढ़िया ने खेत खा लिया। मेरी शान्ति के भंग करने के लिए एक नया ऐटम बम्ब रोज़ तैयार रहता है। किसी को बुखार आ गया तो किसी के दाँत में दर्द है। कभी चीनी राशन की मर्यादा को पार कर गई तो कभी कपड़ों की चिन्ता। सर्वोपरि लड़ाई के दिनों में सुरसा के मुख की भाँति बढ़ाते हुए खर्चों के अस्तित्व में कलियुग में श्रद्धा की भाँति घटते हुए बैंक शेषों को बौद्धों के परम तत्व (शून्य) की गति से बचाने की फिक्र। धन भी हो तो वस्तु का अभाव। कपड़ों के सम्बन्ध में डिस्ट्रिक्ट सप्लाई आफ़िसर से मिलने का संकल्प किया, घर में इधर-उधर की वार्तालाप। सायंकाल को अपने पड़ोसी द्विवेदी जी के यहाँ बैठकर स्त्रियों के वेदाध्ययन के अधिकार पर चर्चा। (यद्यपि मेरे घर में किसी के वेद

पढ़ने की आशंका नहीं, फिर भी शहर के अन्देशे में परेशान होने में कुछ ट्रेजडी के पढ़ने का-सा आनन्द आता है।) मैंने कहा कि जब स्त्रियों में मन्त्रद्रष्टा हैं तो उनको वेदों के पढ़ने का अधिकार क्यों नहीं ? उन्होंने कहा जो शास्त्र में लिखा है, वह लिखा है, उस में संगति लगाने और तर्क उठाने की गुञ्जाएश नहीं। विचारों में घोर मतभेद होते हुए भी वह कटुता की चोटी तक नहीं पहुँचता। और मैं उनके यहाँ बैठकर 'काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' की उक्ति को सार्थक करता रहता हूँ।

रात को सवेरे की साहित्यिक चोरी के लिए कुछ पढ़ा। बच्चों से वार्तालाप किया। कुछ मनोविनोद हुआ। बच्चों को मैं पढ़ाता बहुत कम हूँ। यहाँ तक कि मेरे बच्चे भी मुझ पर इस बात का व्यंग करने लगते हैं। मेरे एक शिष्य प्रवर ने (जब आचार्य प्रवर कहलाते हैं, तो शिष्य प्रवर भी कहलाने चाहिएं) किसी प्रसंग में कहा, (हम तो आपके बच्चे हैं आप का आशीर्वाद चाहते हैं।) मेरे कनिष्ठ पुत्र विनोद ने जिसकी आयु प्रायः बारह साल की है, तुरन्त उत्तर दिया, "आप अगर बाबू जी के बच्चे बनेंगे तो वे आप को पढ़ाना छोड़ देंगे; क्योंकि आप बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं।" यही मेरे पारिवारिक जीवन की कमी है। वैसे इन झंझटों के होते हुए भी अत्यन्त सुखी हूँ।

अभ्यास

१. 'दैनिकी' किसे कहते हैं ? लोग दैनिकी क्यों लिखते हैं ?

२. 'साहित्यिक चोरी' से क्या अभिप्राय है ?

३. काली भैंस लेखक के लिए धवल यश के सृजन में कैसे सहायक होती थी ?

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

[जन्म—सन् १६०६ ई०]

आपका जन्म पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) के मुजफ़्फ़रगढ़ प्रान्त के अन्तर्गत कोट अद्दू नामक गाँव में हुआ था। शिक्षा आपने गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में प्राप्त की। आपकी पहली कहानी 'विशाल महाभारत' नामक मासिक पत्र में सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुई। आपने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के अनुरूप पत्रकारिता (Journalism) को अपनी अजीविका का साधन-क्षेत्र चुना।

देश-विभाजन से पहले आप लाहौर में रहते थे, जहां आपने विश्व-साहित्य ग्रन्थमाला का प्रकाशन किया था। विश्व-साहित्य की उत्तमोत्तम रचनाओं (कथाओं) के सफल अनुवाद भी इन्होंने किए। हिन्दी कथा-साहित्य में इनकी मौलिक कहानियों का काफी आदर हुआ है।

इस समय तक इनके छः कहानी-संग्रह छप चुके हैं। 'चन्द्र कला', 'भय का राज्य', 'अमावस', 'तीन दिन', 'पहला नास्तिक', और 'वापसी'।

इसके अलावा इन्होंने 'अशोक', 'देव और मानव', तथा न्याय की रात' नामक नाटक लिखे हैं।

इनके कुछ इकांकी भी काफ़ी सफल रहे हैं। आपने कुछ निबन्ध भी लिखे हैं। 'हिन्दी कहानी-साहित्य के विकास' पर एक बहुचर्चित तथा ज्ञानवर्धक लेख आपका 'विशाल भारत' में छपा था, जिसकी बड़ी सराहना की गई थी। आजकल आप हिन्दी के पत्र 'आजकल' का सम्पादन कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त विद्यालंक

कामकाज

(१)

बाज़ार भर में तहलका मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्ज
अपने एक नौजवान रिश्तेदार के सहारे अनारकली बाज़ार
बीचोंबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाँह बन्धी हुई थी, क
मैले हो गये थे और मालूम होता था कि बहुत दिनों से
हजामत नहीं बना पाए, इन सज्जन की आँखों में इतनी गह
निराशा और असीम व्यथा का भाव स्पष्ट अंकित था कि दे
वाले सहम कर रह जाते थे। उनके पीछे चालीस-पचास व्य
चुपचाप चले जा रहे थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए आ
व्यक्तियों का पहला बैच आज लाहौर पहुँचा था और उनमें
सम्भवतः यही एक ऐसे सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक
रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दुकान में खड़े होकर नये अ
वाले कपड़ों के नमूनों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। उ

निगाह दूर से आते हुए उस मातमी-से मजमे पर पड़ी; मगर उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दो-एक मिनट में वह सज्जन लाला कस्तूरीमल की दुकान के सामने पहुँचे और उन्होंने अपने साथ के नौजवान से कहा—'बेटा, मुझे दो-एक कपड़े न खरीद दोगे ?'

'मैं भी आप से यही प्रार्थना करने वाला था।'—कहकर नवयुवक उन्हें लाला कस्तूरीमल की दुकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दुकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दुकान पर सेल्समैन की कमी नहीं है; मगर इन सज्जन की मैली-कुचैली हो रही आकृति में भी कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत करते हुए पूछा—'कहिये क्या हुक्म है ?'

उस सज्जन ने धीरे से कहा—'कुछ धोतियाँ दिखलाइयेगा।' उसी वक्त एक आदमी को धोतियाँ लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इलहाम-सा हो गया कि यह सज्जन कहाँ से आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा—'आप क्वेटा से आ रहे हैं ?'

'जी हाँ।'

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। वे पिछले तीन दिनों में कम-से-कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमें से एक का भी जबाब नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार सहित क्वेटा में ही रहते थे और उनके सम्बन्ध में उन्हें अब तक कोई खबर नहीं मिली थी। धोतियों के एक नए आए हुए बण्डल का तागा कैंची से काटते हुए उन्होंने जरा व्यग्र भाव से पूछा—'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के मि० मधुसूदन को आप जानते हैं ?'

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—'जी हाँ !'

'उनके घर वालों को भी।'

'जी हाँ, अच्छी तरह।'

लाला कस्तूरीमल ने लाल किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोलकर दिखाते हुए पूछा—'यह नागपुर की धोती है।... मि० मधुसूदन शायद उन दिनों दौरे पर थे?'

'जी नहीं। २६ मई की रात को उन्हें दौरे के लिए रवाना होना था; मगर वे गये नहीं। दौरा उन्होंने अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया था।'

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—यह धोती धुलने के बाद बहुत हल्की हो जाती है—ठीक गर्मियों के लायक। यह भी नागपुर की है। अच्छा, तो वे दौरे पर नहीं गए?'

'जी, नहीं जा सके।'

'मेरा कोई तार उन्हें नहीं मिला था?'

'मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन अब इस दुनिया में नहीं रहे।'

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती भर भी विश्वास न आया। धोतियों के ढेर में से एक जोड़ा निकालते हुए उन्होंने कहा—'आप किन मधुसूदन की बात कर रहे हैं?'

'उन्हीं मधुसूदन की, जिनकी पत्नी का नाम उर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिण किनारे पर सरकारी हाई स्कूल के खेलने के मैदान के नज़दीक थी।'

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ़-साफ़ दीख पड़ी। डूबा हुआ व्यक्ति जिस तिनके के आसरे को

भी नहीं छोड़ना चाहता, उसी तरह लाला कस्तूरीमल ने अपने अविश्वास को ज़बरदस्ती जमाए रखने की चेष्टा करते हुए कहा—'भूकम्प के बाद आप उनके यहाँ गये थे ?'

'नहीं जी।'

'फिर आपको कैसे मालूम कि वे नहीं बच पाए ?'

'उनके छोटे भाई साहब की ज़बानी मालूम हुआ। आप बिना किनारे की भी कुछ धोतियाँ दिखाइएगा ?'

मदरासी धोतियाँ। कर्नाटक मिल। पांच-सात प्लेन डिज़ाइन फेंको ! लाला जी ने अपने आदमी को आवाज़ दी और उसके बाद कहा—'उनके भाई साहब से ? क्या उन्होंने मि० मधुसुदन का अन्तिम संस्कार किया था ?'

'जी नहीं ! उनकी देह मिली ही नहीं। शायद कोठी की खुदाई करने पर कहीं कुछ पता चले।'

दक्षिण के छज्जे पर से पाँच-सात धोतियों का एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आकर गिरा। उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से ग्राहक के सामने जोड़ा खोल कर दिखाने लगे—'यह कर्नाटक का माल है। कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुँचाया है।' लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गम्भीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा—'तो फिर क्या यह मुमकिन नहीं कि घर में किसी को इत्तला दिए बिना ही वे दौरे पर चले गए हों ?'

'नहीं जी, ऐसा नहीं हुआ। वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे।'

'ये धोतियाँ आप अवश्य पसन्द करेंगे। हाँ, उर्मिल का क्या हाल है ?'

'अस्पताल में ?' लाला कस्तूरीमल की सम्पूर्ण देह एक बारगी काँप उठी और क्षण-भर के लिए उनके दोनों हाथ धोतियों के ढेर पर से उठ गए—'उनकी हालत कैसी है ?'

'चोट तो उन्हें अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चे के देहान्त का सदमा पहुँचा है ! आपको अवश्य ही स्वयं क्वेटा जाकर उन्हें लाने का प्रबन्ध करना चाहिए।' इस जोड़े की कीमत क्या है ?'

'चार रुपया छः आना इसकी खरीद है। मैं आपसे ज्यादा चार्ज नहीं करूँगा। कुछ और भी नमूने दिखलाऊँ क्या ?'

'आपकी मेहरबानी। बनी-बनाई कमीजें भी तो आपके यहाँ होंगी !'

'आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न ?'

'जी नहीं। मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिए।'

'हम खुद जहाँ तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते हैं। आपने खुद उर्मिला को अस्पताल में देखा था ?'

'जी नहीं। यह भी मि० मधुसूदन के भाई साहब ने ही बताया था। मैं खुद चोट खा गया था, कहीं आ-जा नहीं सका।'

'आप रेशमी कमीज़ें चाहते हैं या सूती ? दोनों ही देख लीजिए। रामलाल ३८ नम्बर की कमीज़ें लाना।' और उस एक ही साँस के उत्तर भाग को अत्यधिक करुण और एकदम ठण्डा बनाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—'तो क्या काशी भी इस दुनिया में नहीं रहा ?'

'मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि यह दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूँ !'

इस समय तक काउन्टर पर कमीज़ों का ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल उस ढेर की कमीज़ें दिखलाते हुए बोले—'ये मुर्शिदाबादी रेशम की कमीज़ें हैं, ये ढाके के रेशम की

और ये काशी के रेशम की। मजबूती के लिहाज से यह कश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इमू का सूती कपड़ा सबको मात कर गया है। मिल ने हाल ही में कीमतें भी बहुत गिरा दी हैं।' और तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास को जबरदस्ती जगा कर लाला कस्तूरीमल ने कहा—'मि० मधुसूदन के भाई तो चमन गए हुए थे।'

'दो-एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुँचे थे उस रात वे बरामदे में सोए थे इसी से बच गए। इस कमीज़ की कीमत क्या है?'

'तीन रुपया छः आना। आप से मैं तीन ही लूँगा।'

'धन्यवाद! इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

इसी समय एक संभ्रान्त महिला उस दुकान में आई। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारी को उन सज्जन के पास छोड़ कर स्वय उस महिला की ओर बढ़ गए। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी, परन्तु उसकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव न पड़ने पाया था।

(२)

रावलपिंडी जेल का सबसे अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ मजे-मजे में ग्यारह का घण्टा बजा रहा था। सर्दियों का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हल्की-हल्की धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज़ आई—'तार ले लो।'

ड्योढ़ी में कोई चौकीदार नहीं था। भीतर के सहन से यूसुफ ने तार वाले की आवाज़ सुनी; मगर उसने कोई परवाह न की। मजे-मजे उसने मुगरी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे फाटक की ओर बढ़ा। तार वाला बहुत अधीर हो रहा था, परन्तु यूसुफ का डील-डौल देख कर उसे हिम्मत न हुई कि वह उस पर अपना रोब डालने का प्रयत्न करे।

नजदीक आकर यूसुफ ने पूछा। 'किसका तार है ?'

'यूसुफ जमादार का।'

अट्ठास करके यूसुफ हँस पड़ा। जेल भर में तो कोई यूसुफ है नहीं। बाकी रहा वह, सो उसका तार आ ही नहीं सकता। पिछले कई वर्षों से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक नहीं आई, उसका तार कहाँ से आ सकता है ? फिर उसे तार देगा ही कौन ? सरहद के जिस अफ्रीदी प्रान्त में उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि तक में एक भी डाकखाना या तारघर नहीं। जी भर हँस लेने के बाद यूसुफ ने कहा—'कहीं गलती से कचहरी के यूसुफ का तार जेल के यूसुफ के पास तो नहीं लाये ?'

मगर तार सचमुच उसी का था और बहुत शीघ्र उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौत के बाद कोई और व्यक्ति ठीक तौर से उन्हें दफना सकेगा, इस बारे में उन्हें शक था ; इसी से उन्होंने यूसुफ को बुलाने के लिए तार भिजवाया है।

इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ को पन्द्रह बरस बीत चुके हैं। इन पन्द्रह बरसों में वह एक बार भी अपने देश को नहीं गया। कभी किसी बात के लिए एक दिन की भी छुट्टी नहीं ली। युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में उस अशासित प्रान्त में अपने अनेक साथियों के साथ यूसुफ ने बीसों साहसिक काम किये हैं, डाके डाले हैं, चोरियाँ की हैं और छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ का विवाह हो गया, तो उसके श्वसुर पक्ष का यह सबसे बड़ा उलहाना बन गया कि यूसुफ निठल्ला है—न वह खेती-बारी करता है, न वह किसी गिरोह का सरदार है और न सरकार ही से कुछ पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ और रावलपिंडी पहुँच कर जेल में पहरेदार के

पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह वर्षों में प्रतिमास वह कम-से-कम दस रुपये अपने श्वसुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो खुद कभी उनसे मिलने के लिए गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने श्वसुर का तार पाकर सहसा यूसुफ को अपनी मातृ-भूमि की स्मृति हो आई। वज़ीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ों पर चरती हुई भेड़ें और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वच्छ हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ! उन्हीं सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होते हैं। उसी भूमि की मटियाली-सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और वहीं किशमिश, न्योजे और बादाम की बहार आती है! वहाँ आज़ादी है, वहाँ वीरता है और सब से बढ़कर वहाँ पुरुषत्व है! हाँ, यूसुफ का बहिश्त वही तो है।

और इसके साथ ही साथ उसे अपने श्वसुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौर से दफना सकेगा? यूसुफ को जाना ही चाहिये! वह जायेगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष तरह की स्निग्धता का भाव यूसुफ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुनगुनाता जेलर साहब के दफ्तर की ओर बढ़ गया। यूसुफ के आने से पहले उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुस्कराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने कहा—'क्यों यूसुफ पन्द्रह साल का रिकार्ड तोड़ कर छुट्टी लेना चाहते हो?'

यूसुफ ने कोई जवाब न दिया।

जेलर साहब ने पूछा—'तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है?'

'छियत्तर साल!'

अब भी तुम चाहते हो कि वहाँ पहुँच कर उन्हें बचाने की कोशिश करो?'

यूसुफ चुप रहा।

जेलर ने अबकी भी गम्भीर बन कर कहा—'कानून के मुताबिक यहाँ छः जमादारों को हर वक्त मौजूद रहना लाज़मी है। आठ जमादारों में से दो पहले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत में मैं तुम्हें छुट्टी किस तरह दे सकता हूँ?'

यूसुफ ने कहा—'अलादीन की छुट्टी कल मंजूर हो चुकी है, मगर वह गया नहीं। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक में बाद के लिए मन्सूख करवा लेगा। उसे कोई खास काम तो है नहीं।'

जेलर साहब ने कुछ चिढ़ कर कहा—'तुम्हें कौन खास काम है? ससुर का दफनाना यह भी कोई काम है!'

कठोर हृदय यूसुफ ने सिर झुका लिया—जैसे वह पराजित हो गया हो, मगर जेल के क्लर्क ने उसकी मदद की। वह बोला—'शायद कोई जायदाद-वायदाद का सवाल हो।'

यूसुफ खीज उठा—वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—'मैं किसी जायदाद के लालच से नहीं, अपने ससुर की खिदमत के ख्याल से ही वहाँ जाना चाहता हूँ।'

जेलर ने ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—'ससुर का भी कोई नाता होता है? एक आदमी की लड़की ले ली, इससे वह उम्र-भर के लिए रिश्तेदार हो गया!—यह भी कोई रिश्ता है?'

जेल का क्लर्क मुँह मोड़ कर हँसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लैक्चर अभी तक जारी था—'देखो यूसुफ,

हिन्दोस्तान भर में तुम्हारा यह रिकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन की छुट्टी कभी नहीं ली थी। एक जरा-सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रेकार्ड तोड़ डालना चाहते हो ?'

दानव-काय यूसुफ से जब और कुछ न बन पड़ा तो, उसकी आँखों में आँसू भर आये।

क्लर्क को अब उस पर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा—'तो तुम ज़रूर छुट्टी लेना चाहते हो ?'

यूसुफ ने स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया !

क्लर्क ने जेलर से कहा—'यह छुट्टी लेना चाहता है। उस की पूरी छुट्टी बाकी है। कानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।'

जेलर ने एक बार अपने क्लर्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा परन्तु सहसा उन्हें उसी समय एक भूली बात का स्मरण हो आया। करीब दो महीने बाद पेशावर के जेल-इन्सपेक्टर महोदय रावलपिंडी नियुक्त होकर आने वाले थे। जेलर ने उन्हें भेंट में भेजने के लिए सेवों की एक पेटी का आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाय ?

जेलर ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा—'तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गाँव जाओगे न ?'

'जी हाँ।'

तो तुम्हें दस दिनों की छुट्टी मैं दे सकता हूँ। मगर आज से नहीं। दो दिन बाद से।'

यूसुफ ने नम्रता से कहा—'उनका तो मालूम नहीं, वह कब चल बसें। आज रात को रवाना होकर जल्दी से जल्दी तीन दिन बाद ही वहाँ पहुँच सकता हूँ।'

जेलर ने कहा—'तुम्हारी छुट्टी मन्जूर होने में दो दिन अवश्य लग जायेंगे।'

यूसुफ और क्लर्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर-साहब की ओर देखा। उन दोनों के लिए यह बात अश्रुतपूर्व थी। क्लर्क ने कहा—'दरखास्त पर आपके दस्तखत काफी नहीं है क्या ?'

अपनी कमीनगी पर मुस्कराहट का परदा डालते हुए जेलर ने कहा—'यार, तुम्हें मेरी सेवों की पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी। वह पेटी परसों से पहले यहाँ नहीं पहुँच सकती।'

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्त्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ आज ही रवाना हो जाने के लिए और अधिक आग्रह न कर सका।

(३)

साइकिल के पैडिलों पर तेज़ी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बज-कर पैंतीस मिनट हुए हैं और आज शनिवार है। एक बजे के बाद बैंक से लेन-देन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पाँच सौ रुपये के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर उसे अपने मालिक की एक रेलवे की रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग से होकर जहाँ माल रोड की ओर घूमती है, वहाँ देसराज के मार्ग में सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पच्चीस आदमी जमा थे। देसराज की

साइकिल जब वहाँ पहुँची, तो दो-तीन आदमियों ने हाथ बढ़ाकर उससे कहा—'बाब जी, ज़रा ठहरिये।'

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते-चलते एक आदमी को गश आ गया है। उसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम; मगर बेहोशी की दशा में भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण स्वर में वह बार-बार पुकार उठता है—'पानी ! पानी !'

मगर आस-पास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेले वाले ने देसराज से कहा—'बाबू जी, वह, यहाँ से थोड़ी दूर पर यूनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। आप यदि साइकिल पर वहाँ जाकर एक लोटा पानी ला सकें तो इस बेचारे की जान बच जाय।'

देसराज ने पूछा—'यह यहाँ कब से पड़ा है?'

किसी ने बताया—'करीब पन्द्रह मिनट से।'

देसराज ने दूसरा सवाल किया—'इसे क्या बीमारी है?

एक मुसाफिर ने ज़रा झुँझला कर कहा—'हम लोगों में से कोई डाक्टर तो है नहीं ! जो कुछ है, वह आपके सामने है।'

देसराज शायद इस बात पर खीझ उठता, परन्तु उसी समय उसी ठेले वाले ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—'बाबू साहब, यहाँ इस आदमी का अपना सगा कोई भी नहीं। यदि दो चार मिनट में आप साइकिल पर जाकर कहीं से पानी लाकर दे सकते, तो उसके बाद मैं अपने ठेले पर लिटा कर इसे अस्पताल तक छोड़ आता। आप साहब हैं, आपको माँगने पर पानी मिल भी जायेगा, मगर गरीबों को इन बड़ी-बड़ी इमारतों में कोई घुसने भी न देगा।'

देसराज के जी में सचमुच दया का संचार हो आया। वह खुद भी एक गरीब बाबू है—ऐसा गरीब बाबू, जिसे अपने जीवन-निर्वाह में इन ठेले वाले और झल्ली वाले मज़दूरों से भी बढ़कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उससे दिन भर में बारह घण्टे और चार सप्ताहों में सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दुकान महीने में एक ही दिन बन्द होती है) कस कर काम लेता है, तब जाकर उसे तीस रुपया मासिक वेतन मिलता है। वह भी यदि गरीबों के दुःख दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नहीं समझेगा, तो और कौन समझेगा? वह देख ही रहा था कि कालेज के विद्यार्थियों की साइकिलें और अमीरों की कारें काफी संख्या में उसी सड़क पर से होकर इधर-उधर निकल जाती हैं, किसी को इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ी पर पड़ी। बारह बज कर पैंतालीस मिनट हो चुके हैं। पन्द्रह मिनट के बाद बैंक में न तो रुपये ही जमा कराए जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल निकलने में दो दिन की देर हो जायेगी, और वह स्वतन्त्र नहीं है।

हृदय की सम्पूर्ण भावुकता को कुचल कर देसराज साइकिल पर सवार हो गया और कुछ गज़ आगे बढ़ कर वह कहता गया—'बीस-पच्चीस मिनट में वापस आता हूँ।'

बैंक से अपना काम समाप्त करके देसराज जब गोलबाग के नज़दीक पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ तमाशबीनों की भीड़ इतनी बढ़ गई है कि सड़क पर राह मिलनी भी कठिन है!

देसराज साइकिल से उत्तर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा—'क्या बात है?'

उसने बताया—'कुछ नहीं, कोई मुसाफिर राह चलते सड़क पर गिर कर मर गया है और पुलिस उसकी लाश लेने आई है।'

देसराज ने एक ठण्डी साँस ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार करके पुनः साइकिल पर सवार हो गया। पाँच सौ रुपयों की पासेड वेसलीन के पार्सल की अत्यधिक महत्वपूर्ण रेलवे-रसीद अब उसकी जेब में पड़ी थी।

अभ्यास

१. 'कामकाज' में लेखक ने हमारे सम्मुख किस तथ्य को खोलने का प्रयत्न किया है?

२. 'कामकाज' सम्बन्धी व्यंग-पूर्ण तीनों लघु कथाओं में आपको कौनसी ज्यादा अच्छी (प्रभावपूर्ण) लगी?

३. तीनों कहानियों में लेखक ने मानव के स्वार्थ पर चोट की है। तीनों स्वार्थों का स्वरूप अपने शब्दों में समझाइये।

———

श्री गोपालप्रसाद व्यास, साहित्य रत्न

श्री व्यास जी का जन्म ३० जनवरी, १९१३ ई० को मथुरा प्रान्त के परसोली नाम के कस्बे में हुआ। आप पत्रकार हैं और दिल्ली से निकलने वाले हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक हैं।

हिन्दी में हास्य-रस की सुन्दर रचनाओं का प्राय: अभाव है। श्री व्यास ने इस अभाव को कम करने में सराहनीय योग दिया है। उनकी काव्य-रचनाओं में हास्य-व्यंग्य के छींटे पाठक को मुग्ध करते हैं। हास्य-रस के प्रसिद्ध कवि होने के अतिरिक्त आप निबंधकार तथा जीवन-चरित्र लेखक भी हैं। आपने देश से बाहिर दूसरे देशों की यात्रा भी की है। 'अरबों के देश में' रचना इसी यात्रा के संस्मरण प्रस्तुत करती है।

उनकी रचनाएँ :—

कविता :—'अजी, सुनो !', 'कदम कदम बढ़ाए जा' और 'चले आ रहे हैं'।

निबन्ध :—'मैंने कहा'।

यात्रा :—'अरबों के देश में'।

जीवन-चरित्र :—'कुछ सच, कुछ झूठ', 'हमारे राष्ट्र पिता'।

'गाँधीजी का व्यक्तित्व' 'हमारे राष्ट्र पिता' से ही उद्धृत किया गया है।

गोपाल प्रसाद व्यास

गांधी जी का व्यक्तित्व

अमरीकन पत्रकार लुई फिशर ने गांधी जी के अचरज भरे अनोखे व्यक्तित्व से उत्तेजित होकर सन् ४२ में उनसे एक प्रश्न पूछा था।

"आपके पास ताकत का कोई सामान नहीं। न आपके पास राज-सत्ता है, न पुलिस है, न संगठित संस्था है। (क्योंकि फिशर की राय में कांग्रेस संयमयुक्त संगठित संस्था नहीं थी) फिर क्या कारण है कि आप करोड़ों लोगों पर अपना असर डालने में कामयाब हुए हैं? यहाँ तक कि वे अपना समय, अपना आराम, अपनी ज़िन्दगी तक (आपके इशारे पर) कुर्बान करने को तैयार हो जाते हैं?"❀

यह प्रश्न लुई फिशर जैसे विदेशी पत्रकारों को ही नहीं, देश-विदेश के लाखों व्यक्तियों की बुद्धि को भ्रमित करता रहा है।

❀गांधी जी के साथ सात दिन—लुई फिशर

आखिर गांधी जी में ऐसा क्या था कि लगभग [२]५ वर्ष तक देश की राजनीति उनके इशारे पर नाचती रही? करोड़ों ने उनका जयघोष किया, लाखों उनके साथ चले और [हजा]रों उनकी आन पर मिटे!

ऐसा क्या जादू था कि जो उनके पास [illegible] उन्हीं का [हो] रहा? उन[की ए]क आवाज़ पर महलों [illegible] से [द]र-दर भटकने लगे, पर्दे [illegible] देने लगीं, जो कभी हाकिमी कि[illegible] मार खाने लगे और जो दूसरों को [illegible] लिए जेल स्वयं कृष्ण[illegible] कारो-बार बन्द हुए, बा[ज़ार] बन्द हुए—सारा हिन्दुस्ता[न illegible] उठा। करोड़ों लोग [illegible]करण की एक ही डोरी से बन्धे हु[ए], एक ही झंडे के नीचे, [illegible] एक ही की जय पुकारने लगे—महात्मा गांधी की जय!

महात्मा गांधी की जय—मानो यह परतन्त्र भारत के लिए मृत-संजीवनी औषधि थी, जो जिसके गले उतरी उसमें नव-जीवन ला दिया।

आज विचार करने पर गांधी जी के कृत्य मनुष्य की सामर्थ्य से परे जान पड़ते हैं और कल शायद लोग उन पर विश्वास भी न करें, पर आज के लोगों ने पिछले कल की सचाई को आँखों से देखा है कि अकेला डेढ़ पाव हड्डी का छोटा-सा गांधी देवताओं की भी सामर्थ्य को लाँघ गया था।

वास्तव में गांधी जी का व्यक्तित्व ऐसा ही अनुपम और विराट था।

उनका व्यक्तित्व गंगा की तरह निर्मल, हिमालय की तरह उदात्त और सूर्य की तरह प्रकाशमान था।

उनका व्यक्तित्व पारे की तरह ठोस, हीरे की तरह सघन और वज्र की तरह कठोर था।

उनका व्यक्तित्व पुष्प की तरह कोमल, बालकों की तरह सरल और जल की तरह तरल था।

उनके व्यक्तित्व में राम जैसी मर्यादा, भीष्म जैसी दृढ़ता, युधिष्ठिर जैसी सत्यनिष्ठता, कृष्ण जैसी पूर्णता, बुद्ध जैसी परदुःख-कातरता और महावीर स्वामी जैसी जीव-दया कूट-कूट कर भरी हुई थी।

गांधी जी के व्यक्तित्व का निर्माण संयम-जनिता तेजस्विता और प्रखर राष्ट्रीयता से हुआ था। सबसे ऊपर उनका निर्मल चरित्र उनके महान् व्यक्तित्व की आधार-शिला था।

दुनिया उसी के पीछे चलती है जो उसका सुधार हुआ संस्करण होता है। दुनिया उसी की सुनती है जो उसके अन्तर की वाणी को सुन और सुना सकने में समर्थ होता है। दुनिया उसी के पीछे जान देती है जो उस पर अपनी जान निछावर करने को तैयार रहता है। दुनिया उसी की जय बोलती है जो दुनिया की जय चाहता हैं, उसका मंगल मनाता है।

हिन्दुस्तान गांधी जी के पीछे इसी लिए चला कि वह हिन्दुस्तान के प्रतीक थे। उनका व्यक्तित्व हिन्दुस्तान का, हिन्दी संस्कृति का और हिन्दू-धर्म का सच्चा प्रतिनिधित्व करता था।

सचाई, सादगी, स्वतन्त्रता और सेवा-भावना से गढ़े हुए उनके अलौकिक व्यक्तित्व की गहराई की कोई थाह नहीं। लेकिन जिस सन्त ने जन-सेवा के लिए अपना आपा ही खो दिया हो, जिसमें मिथ्याचार ढूँढ़ने से भी न मिले और जो दुनिया में रहते हुए भी दुनियादारी से कोसों दूर हो, उसके व्यक्तित्व का

विश्लेषण तो वही कर सके जो उन जैसा हो।

तो भी उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली कुछ आधार-भूत बातों की चर्चा की जा सकती है। वही हम संक्षेप में करेंगे।

गांधी जी ने अपने आदर्शों का आरम्भ स्वयं अपने से किया। जनता को देश के लिए सब कुछ त्याग देने का उपदेश देने से पहले उन्होंने अपनी दक्षिण अफ्रीका की कमाई का सार्वजनिक कार्यों के उपयोग के लिए एक ट्रस्ट बना दिया। यहाँ पोरबन्दर और राजकोट में जो पैतृक सम्पत्ति थी, उस पर से न केवल अपना दावा ही हटा लिया, वरन् इसे त्यागपत्र पर अपने चारों पुत्रों के भी हस्ताक्षर करा दिए। अपनी वृद्धा बहन और उसकी विधवा लड़की के गुजारे के लिए भी गांधी जी के पास कुछ न था। वे देश की करोड़ों अन्य असहाय विधवाओं की ही भाँति पीस-कूट कर जीवन निर्वाह करती थीं।

निरन्तर कर्म ही गांधी जी का जीवन था और वही उनकी शक्ति थी। उन्होंने २२-२२ घण्टे लगातार देश के लिये काम किया था। उनके काम-काज का सिलसिला भोजन करने और टहलने में ही नहीं, रेलगाड़ियों के थर्ड क्लास के सफर में भी नहीं टूटता था। सफर में वह हरिजनों के लिए चन्दा ही नहीं माँगते, 'हरिजनसेवक' के लिए लेख भी लिखते थे, पत्रों का जवाब भी देते थे। लगातार १०-१२ घण्टे की लिखाई से जब बुढ़ापे में दाहिना हाथ काम नहीं देता तो वह बाएँ से काम करना शुरू कर देते थे। फिर केवल लिखना, पढ़ना, भाषण देना, मुलाकातें करना, वाद-विवादों में भाग लेना, शंका-समाधान करना, दौरा करना ही उनके काम न थे; वह आश्रम में अपने हिस्से का आटा भी पीसते थे। अपने हिस्से का पानी स्वयं भरते थे। शाक काटते

थे। बीमारों की तीमारदारी करते थे। कठिनाइयों से बिना घबराए कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ता से चले जाना उनका अन्तिम लक्ष्य था। नोआखाली में जहाँ गुण्डों का राज्य था, वह अकेले नंगे पाँव, गाँव-गाँव घूमे थे। कोई एक बात हो तो कही जाय। प्राचीन महर्षियों की भाति गाँधी जी का व्यक्तित्व, लोक-सेवा की अखण्ड तपस्या से निर्मित हुआ था। इसी लिए ही उसमें अलौकिक तेजस्वता थी, इसी लिए ही उनका जीवन प्रेरणामय था और इसी लिए ही वह स्वयं काम करके लाखों से मनचाहा काम करा सकते थे।

चरित्र-बल गांधी जी की सबसे बड़ी पूँजी थी। उन्होंने अपने समस्त विकारों पर काबू पा लिया था। जीवन की समस्त इच्छाएँ—और-तो-और भूख तथा नींद तक भी—उनके वश में थीं। उनकी निजी आवश्यकताएँ सीमित-से-सीमित थीं। वह भी इसीलिए कि लोग समझते थे कि स्वराज्य गांधी जी के पेट में है, जब तक वह हाथ में न आ जाय, गांधी जी अपने शरीर की हिफाज़त करना चाहते थे। वह अपने ही चरित्र-बल पर नहीं, अपने समस्त साथियों के चरित्र-बल पर भी निगाह रखते थे। उनके चरित्र में त्रुटि देख पड़ने पर खुद उसका भीषण-से-भीषण प्रायश्चित करते थे। उन्होंने राजनीति में भी चरित्र-बल को शीर्ष-स्थान दिया था। अहिंसा जब अपनाई तो कूटनीति की तरह नहीं, व्यवहार नीति को तरह ही अपनाई। असहयोग में जो मामूली-सी हिंसा हो गई तो आन्दोलन हा बन्द कर दिया। गांधी जी के राजनैतिक-चारित्र्य की सब से बढ़कर दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती कि सन् '२१ के आन्दोलन में अंग्रेज़ों ने गांधी जी से सन्धि करनी चाही और वे उस समय ही स्वराज्य देने को तैयार थे, पर गांधी जी ने उसको स्वीकार नहीं किया।

क्योंकि अंग्रेज़ चाहते थे कि गांधी जी खिलाफत के सवाल को छोड़ दें। लेकिन उन्होंने कहा कि मुसलमान इस देश के अंग हैं, उनके प्रश्न को नहीं छोड़ा जा सकता।

इसी चरित्र-बल की श्रेष्ठता के कारण ही विरोधी तक उनका आदर करते थे। भारतीयों से अधिक अंग्रेजों की निगाह में उनकी इज्ज़त थी। लोकमान्य तिलक का उदाहरण इस सम्बन्ध में आदर्श है। उन्होंने एक बार कहा था—

"यह आदमी हमारा नहीं है, इसका मार्ग भिन्न है, लेकिन है यह पूरा-पूरा सच्चा। इसके हाथों हिन्दुस्तान का कभी अश्रेय नहीं होगा। हमें इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं भी इसके साथ हमारा विरोध न हो। जहाँ तक हो सके हमें इसकी मदद ही करनी चाहिए।"❀

गांधी जी में विरोधियों को वश में करने की अपूर्व शक्ति थी। भारत के वायसराय उनसे इसीलिए मिलते हिचकिचाते थे कि कहीं गांधी जी का जादू उन पर काम न कर जाये। इस सब का कारण यह था कि गांधी जी इसका अहित नहीं चाहते थे, उनका उद्देश्य पवित्र था और उनका व्यक्तिगत चरित्र इस ऊँचाई पर था कि मनुष्य का मस्तिष्क बरबस उनके चरणों पर झुक जाता है।

गांधी जी जन्मजात नेता नहीं थे। उनमें तिलक, नेताजी और नेहरू-पटेल जैसे युवकों को भावाभिभूत कर लेने वाली उष्मा नहीं थी। उनमें मालवीय और लाला लाजपतराय जैसी मोहाविष्ट कर लेने वाली भाषण-शक्ति भी नहीं थी। फिर भी वह महान् नेता थे और करोड़ों के हृदयों पर शासन करते थे।

❀बापू की झाँकियाँ—कालेलकर

दुबले-पतले व्यक्तित्व-विहीन अनपढ़ गांधी जी की सफलता और नेतृत्व की कुंजी उनकी नैतिक धरातल पर पहुँचा देते थे कि जहाँ उसके तर्कपूर्ण विरोध की गुंजाइश नहीं रहती थी। वह अपनी वाणी और कर्म से मनुष्य की सद्वृत्तियों को झन-झनाते थे। वह सीधे बिना झिझके बुराई पर चोट करते थे, और क्योंकि उस हमले में उनका अपना या किसी वर्ग विशेष का निजी स्वार्थ नहीं रहता था, इसलिए दुनिया की सहानुभूति उन्हें सहज ही प्राप्त हो जाती थी।

गांधी जी का नेतृत्व अन्धा नहीं था। वह मनुष्य को भेड़ बनाकर उस पर शासन नहीं करते थे। हिन्दुस्तान में भेड़ बने हुए मनुष्यों को पहले उन्होंने मनुष्य बनाया और फिर उनसे कहा—देखो, यह रास्ता में, विवेकपूर्ण रीति से इसे स्वीकार कर सकते हो तो, आओ, साथ चलो!

गांधी जी के नेतृत्व में छल, कपट, मिथ्याभिमान या गलतियों को स्वीकार न करने की बात नहीं थी। ❀ लुई फिशर ने एक स्थान पर लिखा :—

"उनका दिमाग तरल और नरम है। जब वह कुछ करने पर उतरते हैं तो डिक्टेटर के समान होते हैं। अपने तर्क के जोर से और अपने साथियों की मदद से वह सारे विरोध को कुचल डालते हैं। मगर उनके सोचने का तरीका डिक्टेटरों जैसा नहीं है। क्योंकि डिक्टेटर कभी अपनी भूल नहीं मानते। मगर गांधी जी अपनी भूल मान सकते हैं और अक्सर मान लेते हैं।"❀

❀ एक अमरीकन पत्रकार

❀ गांधी जी के साथ सात दिन

गांधी जी के विशाल व्यक्तित्व और उनके प्रति भारतीय जनता के प्रबल आकर्षण का कारण भारतीय जनता के लिए किये गये बड़े-बड़े काम और बड़ी-बड़ी राजनीतिक सफलताएँ नहीं थीं—इसका कारण यह था कि गांधी जी जितना ध्यान बड़ी-से-बड़ी बातों पर देते थे उससे कहीं अधिक ध्यान छोटी-से-छोटी बातों का रखा करते थे। काम चम्पारन के किसानों में कर रहे थे लेकिन अहमदाबाद के आश्रम में बने हुए पाखानों का ध्यान नहीं भूले थे कि अब पूर्वी हवा चलने वाली हैं, पाखानों का स्थान बदल देना चाहिए। बड़ी-से बड़ी राजनैतिक उलझनों में पड़े रहने पर भी उन्हें छोटे-छोटे कार्यकर्ता का ध्यान रहता था। वह सबकी खोज-खबर रखते थे। कौन कहाँ है, क्या कर रहा है, कौन बीमार है, किसके शादी है, किसके बच्चा हुआ है, कौन किस संकट में है—इसका गांधी जी को सदैव खयाल रहता था और वह हजार काम छोड़कर इन बातों की देख-रेख के लिए समय निकाल लेते थे।

किसी भी महापुरुष के व्यक्तित्व का पता उसमें पाई जाने वाली आदतों से लगता है। गांधी जी को तेज़ चाल चलने की आदत थी। वह सीधे तन कर बैठते थे। बिना सहारे लिखते थे।

आत्मा की तरह बाहरी सफाई पर भी जोर देते थे। उनके आस-पास का वातावरण सफाई और सुघराई से दमकता रहता था। सौन्दर्य और कला की उनकी अपनी परिभाषा थी। वह इन दोनों चीज़ों को उपयोगिता की दृष्टि से आँकते थे। उन्होंने अपने लिए ऐसी जीवन-कला का निर्माण किया था जो सार्थक और जीवन-शक्ति से ओतप्रोत थी। वह हर एक काम को खूबी और बारीकी के साथ करना पसन्द करते थे। जो लिखते उसे

दोबारा देख कर आगे जाने देते थे। जो बोलते उसे साफ कर बोलते थे। वह आगे कदम तोल कर रखते थे। वह सदैव कृत्रिमता से दूर रहे। जीवन भर मुक्त हास्य उनके चेहरे पर फूटता रहा। स्वभाषा के वह बड़े हिमायती थे। स्वदेशी उनका जीवण-प्राण थी। सत्य उनकी जन्मघुट्टी में था। अहिंसा उनकी जीवन संगिनी थी। सारा हिन्दुस्तान उनका अपना घर था। विश्व उनका अपना कुटुम्ब था। तीन बन्दर उनके गुरु थे—एक इनमें असत्य नहीं बोलता था, एक असत्य नहीं सुनता था और एक असत्य नहीं देखता था। गांधी जी का जीवन प्रार्थनामय था। चान्द टरै, सूरज टरै प्रार्थना का समय नहीं टलता था। वक्त की पाबन्दी कोई गांधी जी से सीखे। जिस समय जहाँ जाना होता, वहाँ चल देते थे, फिर चाहे सवारी मिले या न मिले। रास्ते में मोटर और साइकिल तक पकड़ कर वह नियत समय पर गन्तव्य स्थान पर पहुँचते थे। सेवा-भावना तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। कोढ़ी-परिचर्या तक इन्होंने की थी। एक बार तो जेल में एक कैदी के बिच्छू से काट लेने पर उन्होंने मुँह से उसका ज़हर चूस लिया था। अफ्रीका में एक मुसलमान को रोज़ चार मील चलकर मुफ्त अंग्रेज़ी पढ़ाने जाया करते थे।

निर्भयता और क्षमा-भावना गांधी जी के स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता थी। दक्षिणी अफ्रीका में पठानों ने उन पर हमला किया। परन्तु इस हमले से न वह झिझके, डरे, न अपने रास्ते से ही विचलित हुए। पठानों पर मुकद्दमा ही नहीं चलाया, उन्हें उलटा क्षमा कर दिया। जब वहाँ गोरे जान के दुश्मन बने तो भी वह विचलित नहीं हुए। अपनी सुरक्षा के लिए भी उन्होंने कोई प्रबन्ध नहीं किया और सबसे बड़ी बात यह कि

गोरों के प्रति उनके मन में तनिक भी मैल नहीं आया। चम्पारण किसानों ने जब उन्हें मार डालने को हत्यारे तैनात किये तो एक दिन अकेले ही वह उनके यहां पहुँच गये कि लो, मैं आ गया। एक बार आश्रम में उनकी पीठ पर साँप चढ़ गया और कन्धों पर चढ़कर लहराने लगा तो भी उसे नहीं मारने दिया। मृत्यु से कुछ दिन पहले जब उन पर बम फैंका गया तो उन्होंने कहा कि अपराधी को क्षमा कर दिया जाय। दंगाइयों का आभास पाकर पुलिस ने उनकी प्रार्थना-सभा में सुरक्षा का प्रबन्ध कड़ा करना चाहा, पर उन्होंने नहीं करने दिया। अपने हत्यारे को भी अगर वह ज़रा भी होश में होते तो अवश्य ही क्षमा करने को कह जाते।

वास्तव में गांधी जी भारत की प्रतिमूर्त्ति थे। इस देश की पवित्र रज से ही उनके निर्मल व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। युगों-युगों से चली आई भारत की पुनीत संस्कृति ही उनके व्यक्तित्व में पल्लवित हुई थी। नेहरू जी का यह कथन बिलकुल सच है कि "गांधी भी भारत का प्रतिनिधित्व एक आश्चर्य-जनक सीमा तक करने लगे थे। वह इस पुरातन और संतप्त भूमि की अन्तरात्मा की आवाज़ बन गये थे। एक प्रकार से वह स्वयं भारत थे।"

अभ्यास

१. करोड़ों देशवासी महात्मा गांधी पर अपना जीवन-बलिदान देने के लिए क्यों तैयार हो जाते थे ?

२. व्याख्या करो :—

(i) उनका व्यक्तित्व········जल की तरह तरल था।

(ii) यह आदमी हमारा नहीं है.........मदद करनी चाहिए।

(iii) गांधी जी का नेतृत्व अन्धा नहीं था।

३. "किसी महापुरुष के व्यक्तित्व का पता उसमें पाई जाने वाली आदतों से लगता है।" इस उक्ति के अनुसार म० गांधी के जीवन की महत्त्वपूर्ण आदतों पर प्रकाश डालिए।

———-

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क

श्री अश्क का जन्म पूर्वी पंजाब के शहर जालन्धर में १९१० ई० में हुआ। आप पंजाब यूनिवर्सिटी के ग्रेजूएट हैं। आप पंजाबी, उर्दू और हिन्दी. तीनों भाषाओं में लिखते हैं। आप कवि भी हैं, कहानीकार, उपन्नासकार और एकांकीकार भी। उर्दू में इनकी कहानियों का पहला संग्रह 'डाची' नाम से १९३८ ई० में छपा। अगले वर्ष इनकी पंजाबी कहानियों का एक संग्रह निकला। १९४० ई०' में इनके एकांकी नाटकों का संग्रह 'पापी' नाम से उर्दू में छपा इसके बाद फिर अश्क बराबर छपते रहे। 'दीप जलेगा' इनकी कविताओं का संग्रह है। इनकी कहानियों के जो संग्रह छप चुके हैं, उनमें से कुछ ये हैं:—'छोटे', 'पिंजरा', 'काले साहब', 'जुलाई की शाम का गीत', 'दो धारा'। इनके छपे हुए नाटक और एकाँकी नाटक ये हैं:—'आदि मार्ग', 'जय पराजय', 'पैंतरे', 'कैद और उड़ान' 'छोटा बेटा', 'अलग अलग रास्ते', 'अंजो दीदी', 'स्वर्ग की झलक', 'चरवाहे', 'पर्दा उठाओं, 'पर्दा गिराओ' और 'देवताओं की छाया में'। इस पुस्तक में आप उपन्यासकार अश्क से परिचित हो रहे हैं। इनके उपन्यास हैं:— 'गर्म राख', 'गिरती दीवारें' (१९४७ ई०), 'बड़ी बड़ी आँखें', 'जेतन', 'ये आदमी ये चूहे', सितारों के खेल'।

जो अंश हम इस संकलन में दे रहे हैं वह उनके उपनयास 'गिरती दीवारें' से लिया गया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

'व्हाइट' के हिज्जे

यद्यपि कविराज उसे अपने साथ सैर को ले गये थे और चेतन की मन; स्थिति को समझ कर उसका क्लेश दूर करने हेतु जीवन-दर्शन की शिक्षा देते हुए, उन्होंने उसे यह भी समझाया था कि सफलता के शिखर पर पहुँचने के लिए इन परिस्थितियों से जूझना अनिवार्य है, पर चेतन के आयास और उसकी पीड़ा का अन्त न हुआ था। क्रोध और ग्लानि से उसका मन विक्षिप्त-सा हो उठा था। वह कुछ भी कर न पा रहा था। निरन्तर कई दिन तक बेपतवार की नौक-सा वह डोलता रहा था। लेटा रहता तो अन्यमनस्क सा दिन-दिन भर लेटा रहता और घूमता तो दिन भर उद्देश्यहीन सा घूमा करता।

"मुझे क्या हो गया है ?" बार-बार यह प्रश्न उसके सामने आता पर पीड़ा इतनी अज्ञात थी कि उसका केन्द्र ढूँढ़ पाना उसके लिए कठिन था।

जब चेतन सोचता तो पाता कि जीवन की कटुता से वह उसका पहला ही साक्षात्कार नहीं। वह तो जीवन की कटुता ही में उत्पन्न होकर पला और युवा हुआ है। यद्यपि अपने जन्म के सम्बन्ध में उसे कुछ अधिक ज्ञान न था, पर उसने माँ से सुना था कि उनके पुराने खण्डहर जैसे मकान में बरसात की एक रात उसका जन्म हुआ था। निरन्तर कई दिन से पानी बरस रहा था। उनका मकान टप-टप कई जगह से चू रहा था और कच्चे फर्श पर गड्ढे बन गये थे। परदादी कई बार वर्षा के कोप को शान्त करने के लिए कोयले आँगन में फेंक चुकी थी और वे (माँ और परदादी) मकान के गिर जाने के भय से रात-रात भर जागती रहती थीं। धाय को देने के लिये घर में पैसे न थे। परदादी कहीं से (धर्म-शान्ति अथवा शुद्ध संस्कार में) आए हुए बर्तन बेच कर कुछ रुपये जुटा लाई थी। और प्रसव के पश्चात् माँ को सोंठ और गुड़ मिले 'संठोल' के अतिरिक्त कोई भी शक्ति-वर्द्धक चीज़ न मिली थी। वह तो पूरे चालीस दिन आराम भी न कर पाई थी। परदादी अपनी अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती थी। दो-तीन बार जलते-जलते बची थी। इसलिए ग्यारहवाँ नहा कर ही माँ घर के काम-काज में जुट गई थी।

चिन्ता, भय, पुष्टिकारक भोजन के अभाव और काम के आधिक्य के कारण माँ की छातियाँ शीघ्र ही सूख गई थीं और वह चेतन को छः महीने भी अपने स्तनों का दूध न पिला सकी थी। उसके लिए वह बकरी का दूध लाती। पर, न जाने क्यों, चेतन को बकरी के दूध से घृणा थी! बकरी ही के नहीं, गाय का हो अथवा भैंस का, उसे सब प्रकार के दूध से नफरत थी। माँ की छातियों से दूध पीने के लिए वह लालायित रहा करता।

न पाने पर रोता, पिटता, पिटने पर और अधिक रोता। लेकिन माँ दूध कहाँ से लाती?

वह बहुत छोटा था जब उसके पिता हिसार के स्टेशन पर तार-बाबू होकर गये। तब एक बार परदादी को जमना-स्नान कराने वे दिल्ली ले गए थे। माँ भी साथ थी और चेतन भी! वहाँ से माँ ने नन्हीं नन्हीं कटोरियाँ खरीदी थीं। उसका विचार था कि उनके लोभ से चेतन दूध पी लिया करेगा। एक-दो बार चेतन ने पी भी लिया, किन्तु फिर जब कटोरियाँ उस दूध के स्वाद को न बदल सकीं तो वह कटोरी देखते ही रोने लगता। माँ उसे कान से पकड़ लेती और बरबस लिटा कर दूध पिलाती। वह रोता, चीखता और हाथ-पैर पटकता। इस प्रकार अपने शैशव ही में वह मरियल, चिड़चिड़ा और रोना बालक हो गया था।

शैशव ही में उसे अपने वातावरण की कटुता का आभास भी मिल गया था। एक दिन जब वह दूध पीने में हठ कर रहा था और माँ भरी कटोरी हाथ में लिए उसे मना रही थी, उसके पिता आ गए। एक बार प्यार से, दूसरी बार तनिक कर्कश स्वर में और तीसरी बार गरज कर उन्होंने उसे दूध पीने को कहा। जब इस पर भी उसने कटोरी को मुँह न लगाया तो धड़ से दो थप्पड़ चेतन के पिता ने उसके गालों पर जड़ दिए और क्रोध से आवेश में उसे टाँग से पकड़ कर उलटा लटका दिया। वे उसे इसी प्रकार पकड़ कर दो-एक चक्कर देते यदि माँ लगभग रोते हुए हाथ बढ़ा कर इतना न कहती—"लाइये, अब पी लेगा।"

पिता ने उसे सीधा कर दिया था। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। चेतन रोया न था। वह सहम

गया था। जब माँ ने कटोरी उसके मुँह से लगाई तो उसने बरबस विष के घूँट की भाँति दूध पी लिया। पर दूसरे ही क्षण उसे कै हो गई। तब उसका मुँह धुलाते हुए, उसकी पीठ पर अतीव व्यथा से हल्का सा थपेड़ा जमाते हुए माँ ने आर्द्र कण्ठ से कहा था, "जा कम्बख्त, तेरे भाग्य में दूध है ही नहीं!"

यह हल्का-सा थपेड़ा अपने में भारी प्रचालन शक्ति (motive force) रखता था। चेतन को आगे ही धकेले जाता था। उसने पीछे फिर कर न देखा! धीरे-धीरे आगे ही बढ़ता गया। उस क्रूर पिता की सन्निकटता से दूर होता गया।

सारा दिन वह इधर-उधर भटकता रहा। निरर्थक! निरुद्देश्य! गालों से लेकर कनपटियों तक उसे सारी जगह सुलगती हुई महसूस होती थी। किन्तु इस बाह्य पीड़ा के अतिरिक्त उसके नन्हें, अपरिपक्व अन्तर के किसी अज्ञात स्तर में भी कुछ न कुछ सुलग रहा होगा। बिलकुल इसी तरह जैसे अब उसके अन्तर में कहीं कुछ सुलग रहा था और वह उसके स्थान को निर्दिष्ट न कर पाता था।

वह पिटते समय रोया न था। पर ज्योंही वह आँगन से बाहर हुआ उसकी आँखों से अनायास अविरल आँसू बहने लगे थे। दिन भर ऐसा होता रहा था। जब-जब वह अपना हाथ अपने सुलगते गालों पर ले जाता, उसकी आँखों में आँसू आ जाते।

पिटे हुए पिल्ले की भाँति वह सारा दिन इधर से उधर दुबका फिरता रहा था। दोपहर भर भुस की कोठरी में पड़ा रोता रहा था और सन्ध्या में जब माँ को उसकी याद आई थी

तो वह पानी पिलाने वाले के सूने क्वार्टर में पीढ़े पर भूखा सोया पड़ा था।

बाहर वर्षा हो रही थी, चेतन अपने कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ था। अपने बचपन की इस घटना की याद आने पर उसकी आँखें भर आईं। अनायास उसका हाथ अपने गाल पर चला गया। धीरे-धीरे वह उसे सहलाता रहा। वहीं लेटे-लेटे गालों को सहलाते उसके सामने अपने पिता की क्रूर आकृति घूम गई और फिर बचपन की समस्त घटनाएँ—जब वह अपने इसी क्रूर पिता से बुरी तरह पिटा था।

वह पाँच वर्ष का होगा जब उसके पिता बंगा के स्टेशन पर नये-नये तैनात हुए थे। तब उन्होंने उसे अंग्रेज़ी सिखाना आरम्भ किया था। वे अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में एक स्कूल में अंग्रेज़ी के अध्यापक रहे थे और अध्यापकों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जीवन के आरम्भ में सौभाग्य या दुर्भाग्य से जिसने एक बार अध्यापक बन कर छात्रों पर शासन जमाया, वह शेष जीवन भर अध्यापक बना रहा। चेतन के पिता का विचार था कि इन दिनों स्कूलों में जिस रीति से शिक्षा दी जा रही थी, वह सर्वथा गलत थी। शिक्षा देने का ढंग तो उन्हीं के ज़माने का उत्तम था। स्कूल ही में छात्र को इस ढंग से पढ़ाया जाता था कि घर जाकर पढ़ने अथवा रटने की आवश्यकता ही न रहती थी। तभी उन्होंने उसी अनूठे ढंग से चेतन को शिक्षा देने का निश्चय किया। उनका दावा था कि छः महीने ही में अपने विशेष ढंग से शिक्षा देकर वे चेतन को मैट्रिक में पढ़ने वालों के बराबर ले जाएँगे।

चेतन की माँ को जब उनके इस निश्चय का पता चला तो वह डर से सहम गई। अपना यह ढंग पंडित शादी राम अपने

बड़े लड़के पर भी आज़मा चुके थे और फल यह हुआ था कि माँ ने विवश होकर उसे अपने मायके भेज दिया था। उसने एक-दो बार डरते-डरते कहा भी कि चेतन अभी बच्चा है, उसमें जान तो है नहीं, वह पढ़ेगा क्या ? लेकिन पण्डित शादी राम बंगा के स्टेशन पर नये-नये आए थे, पीने-पिलाने वाले मित्र अभी वे बना न पाये थे। उनके पास अवकाश काफी था, इसलिए इस अवकाश को उन्होंने इसी प्रकार सार्थक करना उचित समझा। गाड़ी के स्टेशन से चले जाने के बाद वे घर आ जाते और चेतन को अपने नये ढंग के अनुसार पढ़ाने का प्रयत्न करते।

सबसे पहले उन्होंने चेतन को गीता के कुछ श्लोक सिखाये— नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि...कर्मणि एव अधिकारस्ते आदि-आदि... और जब चेतन ने उन श्लोकों को कण्ठस्थ करने में असाधारण मेधा का परिचय दिया, तब चेतन के पिता ने उसे सिर, नाक, आँख, कान, होंठ, मुँह, टाँग, पैर आदि शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की अंग्रेजी बताई। इसके बाद उन्होंने उसे हिज्जे सिखाने शुरू किये। धीरे-धीरे वे उसे ऐसे शब्दों के हिज्जों पर ले आये, जिन में कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं पर बोले नहीं जाते—जैसे white, right आदि-आदि। चेतन को यह सब समझ में न आता। जब अक्षर लिखे जाते हैं तो बोले क्यों नहीं जाते ? पर पिता से पूछने का साहस उसे न होता। वह चुपचाप उन्हें तत्काल रट लेता। पण्डित जी ने फतवा दिया कि बड़ा होकर वह अवश्य डिप्टी कमिश्नर बनेगा और अपने इस मेधावी पुत्र को डिप्टी कमिश्नर बनने के योग्य बनाने में उन्होंने अपना कर्त्तव्य भी शीघ्रातिशीघ्र पूरा कर देना उचित समझा।

पढ़ाने में पिता की तत्परता देखकर माँ का हृदय काँपा करता किन्तु चेतन अपनी बाल-सुलभ जिज्ञासा के कारण हर शब्द की अंग्रेज़ी पूछता और पिता सोल्लास उसे बताते।

शब्दों और उनके हिज्जों के बाद उन्होंने अंग्रेज़ी के छोटे-वाक्य बताने आरम्भ किए।

वह जाता है : He goes.

वह स्कूल को जाता है : He goes to school.

वह राम और शाम के साथ स्कूल को जाता है :
He goes to School with Rama and Shama.

वह राम और शाम के साथ तांगे में स्कूल को जाता है :
He goes to School with Rama and Shama in a tonga.

जब उसने ये वाक्य याद कर लिये और यह भी सीख लिया कि क्रिया के साथ s अथवा es कहाँ लगता है, I, we, you, they के साथ खाली s और he तथा she के साथ es, क्यों आता है तो चेतन के पिता ने उसे भूत और भविष्यत् काल के वाक्य बताए। जब गाड़ी स्टेशन पर आती तो वे अपने इस मेधावी पुत्रको बुला लेते और बड़े गर्व के साथ गार्ड के सामने उससे अंग्रेज़ी के वाक्य पूछते। जब वह ठीक-ठाक बता देता और गार्ड और टिकेट-कलक्टर आश्चर्य-चकित से इस नन्हें से बालक की ओर ताकते रह जाते तो चेतन के पिता उसे उठा कर चूम लेते। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, पतली दूब की भाँति चेतन के सुकोमल गालों में चुभ जाती। उसका साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जाकर अपनी सारी कारगुज़ारी सुनाता। सुनते-सुनते माँ के होठों पर गर्वीली मुस्कान आ जाती।

फिर सहसा वह मुस्कान विषाद की गहरी रेखाओं में बदल जाती। माँ चुपचाप शून्य में देखने लगती। विषाद की रेखाएँ उसके होठों से फैल कर उसके सारे मुख को आच्छादित कर देतीं।

तभी एक दिन पंडित शादी राम ने चेतन को उस समय बुलाया जब गाड़ी जा चुकी थी। बात यह थी कि उनका एक मित्र अपने दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाले लड़के के साथ 'राहों' जा रहा था। चेतन के पिता ने उसे गाड़ी से उतार लिया था और खाने की दावत भी दे दी थी और देसी शराब का एक अद्धा भी ठेके से लाने के लिये पानी वाले को भेज दिया था। चेतन जब पहुँचा तो उसके पिता ने पहले बड़े अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसकी स्मरण-शक्ति और उसकी बुद्धि के चमत्कार का ज़िक्र किया, फिर उन्होंने अचानक अपने उस मित्र के लड़के से दो-चार शब्दों के हिज्जे पूछे—कुछ उनकी सूरत, कुछ उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, कुछ उनकी लाल-लाल आँखें; कुछ उनके स्वर की कर्कशता—उस बच्चे ने एक बार उनकी ओर देखा और सहमा-सा चुप बना रहा। तब जैसे विजेता के उल्लास से उन्होंने चेतन की ओर देखा और मूँछों को बल देते हुए कहा—"इधर आओ!"

चेतन का ख्याल था कि शायद वे उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरेंगे या उसे उठा कर अपनी रान पर बिठा लेंगे, पर जब उससे केवल इतना ही कहा गया—"इधर आओ!" और वह भी ज़रा कर्कश स्वर में, तो वह मन ही मन में तनिक डर गया, किन्तु प्रकट साहस बनाए हुए वह पिता के पास चला आया।

तभी पानी वाला शराब की बोतल ले आया। बोतल को

देखते ही चेतन के पिता की आँखों में लाली के डोरे कुछ और गहरे हो गये और उनमें एक पाशविक सी चमक कौंद उठी। कार्क को खोलते हुए उन्होंने चेतन से पूछा :

"सफेदी की अंग्रेज़ी क्या है ?"

"व्हाइट"

"यह तुम खड़े कैसे हो, सीधे हो !"

चेतन सीधा खड़ा हो गया।

पानी वाले ने मेज़ पर दो कटोरियाँ रख दीं। कार्क खोल कर थोड़ी-थोड़ी मदिरा दोनों कटोरियों में उडेलते हुए चेतन के पिता ने चेतन को हुक्म दिया—

"हिज्जे करो ! !"

डब्ल्यू...डब्ल्यू...आई-टी-ई !

"क्या ! !" चेतन के पिता बोतल रखते हुए गरजे। और धड़-से एक थप्पड़ चेतन के गाल पर पड़ा और कनपटी तक उस की खाल सुलग उठी। उसने तुतलाते और काँपते स्वर में गाल पर हाथ रखते हुए कहा—"नहीं जी, नहीं जी, डब्ल्यू-एच-आई-टी-ई !"

"पहले क्यों नहीं बताया मादर—!" और एक थप्पड़ उसके दूसरे गाल पर पड़ा। और एक मुक्का उसकी पीठ पर।

चेतन डर से काँपने लगा। मुक्का इस ज़ोर से उसकी पीठ पर पड़ा था कि उसकी पीठ दोहरी हो गई थी। चेतन के पिता ने कटोरी में पड़ी हुई शराब को एक ही घूँट में खाली करके मुँह बना कर कुल्ली की और पानी वाले को गाली दी कि वह अचार क्यों नहीं लाया। पानी वाला अचार लेने के लिये भागा और चेतन के पिता चेतन की ओर मुड़े। पर चेतन को इसके

बाद कुछ भी याद नहीं। उसे कुछ-कुछ ऐसा आभास था कि उसकी आँखों के आगे पर्दा-सा छा गया था—उसकी उस चेतना के आगे भी, जो उसके मस्तिष्क में बैठी उसे हिज्जे, शब्द, और वाक्य सुझाया करती थी। उसे दूसरे शब्दों के हिज्जे पूछे गये थे। वाक्य पूछने की नौबत ही न आई थी और न जाने कैसे, उसने काँपते-काँपते जो हिज्जे किये थे, वे सब गलत थे और उसके पिता उसे उन्माद की भाँति पीटने लगे थे और उस गार्ड ने बड़ी कठिनाई से उसे उनके चंगुल से छुड़कार दरवाजे के बाहर किया था।

चेतन स्टेशन के कमरे से निकला तो लज्जा, क्रोध और ग्लानि से उसका नन्हा सा हृदय भर रहा था। आँसू अनायास उसकी आँखों से निकले जा रहे थे। वह किधर जा रहा है? कहाँ जा रहा है? उसे कुछ बोध न था। वह रोता जा रहा था, हाथ की पिछली तरफ से आँसू पोंछता जा रहा था, और भर आने के कारण बार-बार नाक को ऊपर चढ़ाता जा रहा था। वह घर की ओर न गया था। न जाने क्यों माँ के सामने यों रोते जाने में उसे लज्जा आ रही थी। शायद उसके नन्हें से हृदय में कहीं नन्हा सा अहम् आ बैठा था और उसके इस अहम् को माँ के सामने यों रोते जाना स्वीकार न था। वह सीधा माल-गोदाम में गया था और गेहूँ की बोरियों में मुँह छिपा कर रोता रहा था। पके हुए अनाज की सोंधी-सोंधी सुगन्धि उसके नयनों में प्रवेश करके एक विचित्र तन्द्रा-सी उत्पन्न कर रही थी। वह सो गया था। किन्तु इस नींद ने उसके मन से उस लज्जा, उस ग्लानी के बोझ को हल्का न किया था। वहीं सोते-सोते उसके सामने कुछ वैसा ही भयानक दृश्य आ गया था। उसने स्वप्न में अपने पिता को डाँटते सुना था। वह जाग उठा

था। उसने सुना कि उसके पिता माल-गोदाम की ओर आ रहे हैं। वह चुपचाप बोरियों से उतर कर खिसक गया था।

माल-गोदाम से निकल कर वह खेतों, खलिहानों में घूमता रहा था। उसे खाने-पीने की चिन्ता न थी। खो जाने का भय न था—वह घूमता रहा था, निरर्थक, निरुद्देश्य।

वह रहट पर गया और कुएँ की जगत पर बैठकर चुपचाप रहट की रूँ रूँ…रीं-रीं सुनता रहा था; कृषक बालक को बड़े मज़े से गाधी पर बैठे, कभी-कभी टिटकारी भरते, बैलों को लगातार उसी चक्कर में घूमते, रहट की टिंडों को भर कर खाली होते देखता रहा था।

वह खेतों में गया था और कितनी देर तक वहाँ गेहूँ की बालियों को बैलों के खुरों के नीचे पिस कर दानों को छोड़ते, छाज (सूप) की सहायता से भुस और दोनों को अलग-अलग होते, 'साधे' और 'तंगलियों' से दोनों के ढेर बनते और बोरियों में अनाज को भरे जाते देखता रहा था।

वह चरसे पर भी गया था। कितनी ही देर तक वह मन्त्र-मुग्ध सा वहाँ खड़ा चरस की 'लाओ' (रस्से) को बैलों द्वारा खींचे जाते देखता रहा था। जब बैल लाओ को लेकर नीचे की ओर जाते तो हाँकने वाला तनी हुई लाओ पर बैठ जाता। उधर बैल ढलवान में पहुँचते उधर चरसा ऊपर आ जाता और कृषक उसे थामते हुए ज़ोर से संगीत-भरे स्वर में हाँक लगाता "बेली रब्ब ओ—!"❀ और चरसे से पानी की नहर बहने लगती। चरसे को खाली कर वह कुएँ में फेंकता। बैल फिर ऊपर को चल पड़ते, चर्खी पर से लाओ घिसटती जाती। अर्से तक वहाँ चेतन निरन्तर यही क्रय देखता रहा।

❀भगवान् ही सहायक है!

किन्तु प्रकट ये दृश्य देखते हुए भी वह उन्हें न देख रखता था। उद्भ्रान्त की भाँति वह घूमता रहा था। उसकी आँखें तो इन सुखद दृश्यों के स्थान पर कोई दूसरा ही दृश्य देखती रही थीं, अनायास भर आती रही थीं और वह उस हाथ से (जो उड़ती हुई मिट्टी के कारण अब मैला हो चुका था) अपने आँसू पोंछता रहा था। उसके नन्हे हृदय में बवण्डर-सा उठता-मिटता रहा था। उसे अतीव दुःख था। पर वह दुःख निर्दोष पीटे जाने का था, सोचने का अवसर दिये बिना पीटे जाने का, या दूसरे लड़के के सामने पीटे जाने का था—इसका विश्लेषण उसका नन्हा-सा मस्तिष्क न कर पा रहा था। उसके गालों की टीस मिट गई थी। पर उसके नन्हे हृदय में जो घाव बन गया था उसमें असह्य पीड़ा हो रही थी।

वहीं लेटे-लेटे चेतन को महसूस हुआ कि वह घाव तो अब भी वहाँ है और उसमें पीड़ा उतनी ही तीव्र है। वह आज तक इस पीड़ा को कैसे भूले रहा? उसके सामने उसका अपना नन्हा उद्भ्रान्त रूप अपनी समस्त व्यथा के साथ आ गया। अपने क्रूर पिता का चित्र भी उसके सामने आया और उसके शैशव का वह दुखद अध्याय जैसे नए सिरे से उसके सामने खुल चला।

सन्ध्या को जब वह थक कर और तनिक आश्वस्त होकर घर आया था तो उसके घुटनों तक मिट्टी चढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, आँखें रोने के कारण सूज आई थीं और मैले हाथों से बार-बार पोंछने से उसके चेहरे पर धब्बे बन गये थे। माँ उस समय गाय का दूध दोह कर उसे चूल्हे पर गर्म करने जा रही थी। चेतन को इस दशा में देख कर उसने उसे छाती से लगा लिया। चेतन चाहता था उसके आँसू न निकलें पर सहसा उसे

रोना आ गया। किन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी रो रही है तो वह अपने आप चुप हो गया। तब उसे चुप होते देखकर अथवा अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण माँ ने भी जैसे अपने आँसुओं को बरबस रोक लिया। उसे अपनी छाती से अलग किया और सिगड़ी में उपलों की आग पर सुबह से कढ़ने वाले गाढ़े दूध की मलाई उतार कर उसके साथ चेतन को रोटी दी। जब वह खाने लगा तो माँ ने धीरे-धीरे रसोई का काम करते चेतन से हिन्दी शब्दों का अंग्रेजी अनुवाद, उनके हिज्जे और उन समस्त वाक्यों की अंग्रेजी सुनी जो चेतन के पिता ने उसे बताए थे। खाना खाते-खाते चेतन ने अपनी माँ को वे सब शब्द, हिज्जे और वाक्य ठीक-ठीक सुना दिए। वह न कहीं अटका न कहीं भूला। किन्तु जब रात को पिता ने उसे सोते हुए झकझोर कर उठाया और शराब के नशे में अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए उसे डाँटा कि वह इतना जल्दी क्यों सो गया है और कुछ कठिन शब्दों के हिज्जे पूछे तो चेतन बिना अटके न बता सका। वह अटका कि उसके थप्पड़ पड़ा कि उसे सब कुछ भूल गया। इसके बाद उसे इतना स्मरण है कि वह भूलता गया और पिटता गया। हुक्के की नली से पिता ने उसे पीटा और एक बार जब पिटता-पिटता वह दीवार तक आ गया और नली बरामदे के खम्बे में लगने से टूट गई तो पिता ने अपने नशे और क्रोध के आवेश में चूल्हे में से अधजली लकड़ी उठा ली। तब रोते-रोते माँ बीच आ गई। तीन-चार लकड़ियाँ उसके लगीं। एक बार चेतन के घुटने पर पड़ा। चपनी का माँस उड़ गया। पिटते-पिटने उसका पेशाब निकल गया। वह न जाने कितना पिटता यदि परदादी गंगा देवी अपनी कमान सी कमर को लठिया के सहारे सम्हाले हुए चेतन के पिता को

गालियाँ देती हुई उनके मध्य न आ जाती और चेतन पर खींच कर मारी हुई लकड़ी उसकी पीठ पर न जा लगती और अपनी दादी को पीटने के पाप का ख्याल करके चेतन के पिता का नशा न टूट जाता !

शैशव की धुँधली गुफ़ाओं से निकल कर ऐसी कई घटनाएँ चेतन के सामने आ गईं जिनके फलस्वरूप वह आज ही की भाँति, खिन्न, क्लान्त, दुःखी और व्यथित हुआ था।

"वह तो सदैव ही पिटे हुए पिल्ले की भाँति छिपता, डरता और दुबकता रहा।" वह सोचने लगा, "कभी अपने सम-वयस्क लड़कों से वह नहीं मिल पाया। उनके खेलों में शामिल नहीं हो सका। बड़े भाई की भाँति गिल्ली-डंडा, कबड्डी, जंग-पलंगा, लम्बी-लम्बी टीलो और दूसरे ऐसे ही खेलों में भाग नहीं ले सका। वह सदैव एकाकी बना रहा। पिता ने दोनों टाँगों से पकड़ कर शून्य में उसे इस तरह झकझोरा था कि उसकी आँतें सदा के लिए निर्बल हो गई थीं। उसका पेट दर्द किया करता था और कई बार ऐसी असह्य पीड़ा उसके सिर व पेट में होती कि वह, रात-रात भर रोया करता था। किन्तु इन सब बातों के बावजूद क्यों उसके मन में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई ? क्यों आज की भाँति उसका मन प्रतिहिंसा से नहीं भरा ? क्यों वह कभी खिन्न मलीन होकर नहीं बैठा ? वह तो सदैव चलता रहा, क्यों ?...........

["गिरती दीवारें" से]

अभ्यास

१. यह पाठ किस उपन्यास में से लिया गया है? इसके लेखक कौन हैं?

२. 'व्हाइट के हिज्जे' इस अंश में लेखक ने भारतीय विद्यार्थी के जीवन में किस दुर्भाग्य को दिखाने का यत्न किया है?

३. चेतन के जीवन में से आयास और पीड़ा का अन्त क्यों नहीं हुआ?

४. चेतन के दुर्भाग्य के लिए क्या वह स्वयं भी ज़िम्मेदार था?

श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र

[जन्म—१६०३ ई०]

मिश्र जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ प्रान्त के बस्ती नामक स्थान में हुआ। आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्नातक (ग्रेजूएट) हैं। आपने साहित्य-जगत् में प्रवेश तो कवि-रूप में किया तथा सन् १९२५ में आपकी कविताओं का एक संग्रह 'अन्तर्जगत्' नाम से छपा भी, परन्तु आपका स्वाभाविक क्षेत्र कविता नहीं नाटक था। आज हिन्दी साहित्य में नाटककार के रूप में श्री मिश्र जी सम्भवत: सभी दूसरे नाटककारों से अधिक पढ़े जाते हैं। बीसवीं शताब्दी के उलझनों-भरे जीवन की सच्ची प्रतिक्रिया हमें मिश्र जी के समस्या-नाटकों में जितना स्पष्ट और प्रभावशाली रूप लेकर प्रगट हुई है, उतना दूसरे नाटककारों की रचनाओं में नहीं।

श्री मिश्र जी के इस समय तक ३० से अधिक नाटक छप चुके हैं, जिनमें कुछ ये हैं: सन्यासी (१९३०), राक्षस का मन्दिर ('३१), मुक्ति का रहस्य ('३२), राजयोग ('३४), सिन्दूर की होली ('३४), आधी रात ('३७), अशोक ('३९), 'गरुड़ ध्वज', 'नारद की वीणा', 'गुड़िया का घर,' 'कावेरी में कमल', 'दशाश्वमेध', 'वत्सराज', 'चक्रव्यूह' और 'मृत्युञ्जय'।

प्रस्तुत अंश उनके अन्तिम नाटक में से है जिसमें राष्ट्रपिता के बलिदान का मार्मिक दृश्य दिखाया गया है।

Inderlal

लक्ष्मी नारायण मिश्र

Author

मृत्युञ्जय

[दिन का अन्तिम पहर। विशाल भव्य भवन का दृश्य। सब ओर कलापूर्ण चहारदीवारी के भीतर यह भवन, वृक्षों, लता-कुञ्जों, फूलों की पालियों और हरी दूब के कई खण्डों की समतल भूमि के साथ जैसे आँखों का उत्सव बन रहा है। इसी भवन के कमरे में गांधी एक चटाई पर, जो कमरे के एक कोने में है, बैठे हैं। चटाई के आगे नीले रंग की दरी बिछी है। एक पुरुष बाहर वाले शीशे के कपाटों में से एक से प्रवेश कर सिर झुकाये खड़ा होता है। कमरे के इस ओर शीशे के कपाट हैं। दो ओर ऊँची लम्बी शीशे की खिड़कियाँ—जिनके उस पार से उत्सुकता और कौतूहल में बाहरी जन डरते-डरते झांक लेते हैं और गाँधी के दर्शन का लाभ लेकर हट जाते हैं।

गांधी—(उस पुरुष की ओर देखकर, मुस्कराने की चेष्टा में) कुछ कहना है ?

वह पुरुष—जी······सरदार और मौलाना आ रहे हैं।

गांधी—आ जाएँ···तुम्हारी यह दशा क्या है ? भय से बड़ा पाप मैं दूसरा नहीं मानता। वन में आग लगी हो और निकलने के मार्ग पर सिंह खड़ा हो, ऐसी विपत्ति में पड़े प्राणी का रक्त भय से जम जाय, वही दशा तुम्हारी है। सरदार सवेरे जो कुछ कह गये उसी से तुम इतने डर गये हो।

वह पुरुष—आपके प्राण पर संकट आया है और आप हठ नहीं छोड़ रहे हैं। परसों जो अमेरिका के सज्जन आपके पास आये थे, कहने लगे—वे अपने देश में आपके संकट के स्वप्न देखकर आपके दर्शन को यहाँ आये हैं। (साँस लेकर) यह भी कह गये कि अब उन्हें आप मिलेंगे कि नहीं।

गांधी—आज प्रार्थना में वह आयेंगे। विचारवान व्यक्ति हैं। अच्छे लेखक भी हैं। उदार बुद्धि से दूसरे का मत समझना चाहते हैं। सबसे बड़ा गुण तो यह है कि तर्क-बुद्धि से नहीं भाव से···अनुभव से जो मिले उसे लेने की श्रद्धा भी उनमें है। विवेकानन्द के वेदान्त के आनन्द में इस देश के दर्शन को, हिमालय और गंगा के दर्शन को वह भला आदमी चला आया। इस यात्रा में उसे एक पुस्तक की सामग्री मिलेगी। जिसमें भारतीयता को पश्चिम की आँख से नहीं, इस देश की आँख से वह देखेगा। ऐं·· भूल रहा हूँ पश्चिम की आँख कोई नहीं है। देखना नहीं चाहते वे, आँख मूँद कर तर्क करते हैं।

[मौलाना और सरदार प्रवेश करते हैं। गांधी के सामने दरी पर बैठ जाते हैं। चिन्ता के चिन्ह दोनों के मुख पर हैं।]

[पहले वाला पुरुष चला जाता है।]

गांधी—मौलाना ! सरदार सवेरे धमकी दे गये…अपने पद से त्याग-पत्र दे देने की। जीव इस देह को त्याग कर चला जाता है। नित्य हम यह देखते हैं।

मौलाना—देखिये ! दस दिन पहले की बात है, आप बोल रहे थे तभी किसी ने बम फेंक दिया। दो आदमी इस बीच और गिरफ्तार हुए। मुल्क भर की हिफ़ाज़त जिसके कन्धे पर है वह आपकी हिफ़ाज़त न कर सका तो फिर किसे मुँह दिखायेगा, क्या कह कर…

सरदार—प्रार्थना आप इसी कमरे में कर लें…जो कहना हो यहीं इसी आसन पर बैठे माइक से कह लें…दिल्ली भर या कहें तो रेडियो से देश भर में उसे पहुँचा दिया जाय।

गांधी—कल मैं वर्धा चला जाऊँगा। प्राण का भय सपने में भी मैं अपने भीतर नहीं आने दूँगा। इस देश में ऋषियों ने जिस महामन्त्र का दर्शन किया उसे 'मां भैः'❀ कहते हैं। जिस पल यह श्रद्धा मिटी, भय ने मेरे मन को छू दिया, उसी पल अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, सब मुझे छोड़ कर भाग जायेंगे। स्वार्थ में सना हुआ मैं अधम प्राणी बन जाऊँगा।

सरदार—तब फिर प्रार्थना-सभा में आने वालों की तलाशी बाहर ले ली जायेगी।

गांधी—इसका फल मेरा अनशन होगा। अंग्रेजों को शत्रु मैंने कभी नहीं माना। डरबन में जिन गोरों ने मुझ पर चोट

❀ डरो मत

पर चोट दी उन पर मुकद्दमा मैंने नहीं चलने दिया। सब किसी के भीतर अपनी आत्मा का बोध लेने वाला मैं अपने देश-वासियों को·· अपने भाइयों को···अपने पुत्रों को शत्रु-बुद्धि से न देखूँगा। परीक्षित को तो अपनी मृत्यु का पता आठ दिन पहले चल गया था, क्यों नहीं बच गये? वह राजा थे, मैं रंक हूँ। भगवान् के हाथों से निकल कर भारत के गृह मन्त्री की पुलिस के हाथों में मुझे नहीं जाना है। (दिवाल के सहारे टिक जाते हैं।)

सरदार—तब सेना और पुलिस क्यों रहे? पिछले उपवास से आप निर्बल हो गये, मैं आपको उत्तेजित करना नहीं चाहता।

गांधी—देह का धर्म क्रोध भी है। तीन गुण वाली इस सृष्टि में उसका होना भी आवश्यक है। तुम क्रोध करो···मैं भी क्रोध करूँ···हम सब क्रोध करें पर किसी का धर्म न छूटे। बम फेंकने वाला मुझे अपनी जाति का, हमारे धर्म का शत्रु मान गया। यह उसका भ्रम था। मेरे कारण उस जाति की ध्वजा बराबर ऊँची उठी है। इंगलैण्ड में, अफ्रीका में और इस देश में भी। पश्चिमी देश और तड़क-भड़क में इस देश के पुरुष अपनी दासता के बन्धन में और गांठें लगाते चले जा रहे थे। (ऊपर के वस्त्र को हिलाकर) यह वेश मैंने अपने देश को निर्भय बनाने के लिये धारण किया। काली कमली ओढ़ कर पाँचवें जार्ज के राजभवन में जा घुसा··· जिनसे बड़ा राज्य इतिहास ने न पहले देखा था और न बाद में देखेगा।

आज़ाद—चर्चिल ने तो इस वेश में आपको नंगा फकीर कह कर बादशाह के पास जाने देने से रोकना भी चाहा।

गांधी—भारत सचिव होर न रहते तो मेरा उनके पास पहुँचना कठिन होता। बड़े भाई मालवीय जी ने कह दिया था, यदि मेरा वेश सम्राट् के निकट जाने में बाधक बताया गया तो वे भी वहाँ न जायेंगे और फिर भारत में इस अपमान का जो विरोध होगा उससे वह साम्राज्य हिल उठेगा।

पटेल—इसमें सन्देह नहीं···वह तो होता ही···

गांधी—तब किस में सन्देह है सरदार! भय का प्रभाव मेरे मन पर जो पड़ा होता तो विलायत में जब वैरिस्टर बनने के लिये गया, आधा ईसाई तभी बन गया होता। देश के धर्म और संस्कार की मैंने भी हँसी उड़ाई होती। अफ्रीका की अदालत में मैजिस्ट्रेट के डाँटने पर सिर से पगड़ी उतार दी होती। वहाँ जैसे सब सामी थे मैं भी चुपचाप सिर झुका कर सामी बन जाता!

आज़ाद—सामी क्या···?

गांधी—दक्षिण भारत वालों के नाम के साथ स्वामी शब्द बहुत लगा रहता है। इस देश में तो गुरु को स्वामी कहते हैं। अफ्रीका में गोरे इस शब्द को कुली के अर्थ में प्रयोग करते थे। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के सभी, जो अफ्रीका पहुँचे थे, इसी नाम से पुकारे जाते थे। पटरी पर चलने का अधिकार भी उन्हें नहीं था। जब चलते थे, सड़क के बीच से। दोनों ओर की पटरी गोरों के लिए सुरक्षित थी डरबन से प्रिटोरिया के मार्ग में घोड़ा गाड़ी पर यूरोप के सभ्य वेश में रहने वाले गांधी को प्रथम श्रेणी का टिकट पास रहते भी गोरे ने भीतर नहीं बैठने दिया। कोचवान के पास से भी उसने मुझे 'सामी' कह कर दूसरी जगह हटने को कहा, मेरा वहाँ से हटना पूर्वजों और उनके गौरव

का अनादर लगा और गोरा सामी शब्द के साथ अनेक विशेषण लगा कर मुझे पीटता रहा। डर नहीं समाया मेरे भीतर, देह की चाहे जो गति हुई।

पटेल—संघ और सभा वाले आपको देश का शत्रु मान बैठे हैं।

गांधी—इसलिये कि उनके देश के बाहर उपनिवेशों में भारत वालों की क्या दशा थी इसे या तो वे जानते नहीं या भूल गये हैं। एक बार डरबन में सड़क की पटरी पर चल रहा था, सम्मानित बैरिस्टर के पश्चिमी वस्त्रों में, फिर भी पुलिस वाले ने ठोकर से मुझे सड़क पर कर दिया। एक प्रतिष्ठित गोरे पादरी ने जो घोड़े पर चला आ रहा था अपनी आँख से यह घटना देखी। स्वयं गवाह बनने को तैयार हो गया फिर भी मैं मुकदमा चलाने अदालत में नहीं गया। मुझे डराने की सबसे बड़ी बात तो पंचम जार्ज ने स्वयं पैदा की फिर भी मैं नहीं डरा।

आज़ाद—क्या थी वह बात...(उत्सुक मुद्रा)?

गांधी—सम्राट् के भोज से गोलमेज़ के सभी भारतीय सदस्य जब चलने लगे, सम्राट् ने अकेले मुझे रोक लिया यह कह कर कि "मिस्टर गांधी आप एक मिनट रुक जायें।" वह लोग बाहर हो गये। सैमुएल होर एक ओर हट आ हो गये। उनके ललाट पर सन्देह की रेखायें पड़ ग... पंचम जार्ज के मुँह से निकला "मिस्टर गाँधी अब आप मेरे साम्राज्य में दखल न देंगे।" होर के मस्तक से पसीना छूट रहा था कि यदि कोई कड़ी बात मेरे मुँह से निकली तो चर्चिल की बन आयेगी; जार्ज भी मेरा उत्तर सुनने के लि... तन कर खड़े हो गये।

आज़ाद—बड़ा नाजुक मौका था यह...आपने क्या जवाब दिया ?

गांधी—संसार के सबसे बड़े सम्राट् के आतंक का भय मेरे भीतर आता है कि नहीं यह अवसर इस परीक्षा का था। आप लोग मानेंगे नहीं...गीता जैसे रूप धर कर मेरे सामने खड़ी हो गई सैमुएल होर की आँखें मुझ से दया की भीख मांग रही थीं।

[चुप होकर खिड़की के बाहर आकाश देखने लगते हैं, सूर्य की किरणें मुख पर आ जाती हैं।]

आज़ाद—मेरी साँस आपका जवाब सुनने के लिये रुक गई है !

गांधी—(जैसे चेत में आ कर) हाँ सैमुएल होर की दशा से मेरे भीतर हँसी आ गई, मैंने सम्राट् की आँखों में सीधे देखते हुए, गीता के स्थित प्रज्ञ के लक्षण स्मरण कर कहा "मैं यहाँ श्रीमान् के आतिथ्य का सुख लेने आया हूँ, आप के साथ बहस करने नहीं।"

आज़ाद—(दोनों हाथों से ताली बजाकर उत्साह में) वाह ! इससे अच्छा दूसरा कोई जवाब होता ही नहीं।

गांधी—इतने शब्द...फिर अनायास मेरे मुँह से हँसी फट पड़ी। जार्ज भी हँसने लगे। उनके मन में सम्भवतः यह आया कि इस आधे पागल साधु से साम्राज्य को भय नहीं है। होर की साँस जो ऊपर टंगी थी नीचे आ गई।

आज़ाद—जितने लोग गोलमेज़ में गये थे सबसे अधिक खतरनाक आप ही बादशाह को दिखाई पड़े।

गांधी—वे मुझ से डर गये। फिर उन्होंने मुझे डराना चाहा। पर मैं उनसे डरा नहीं। अफ्रीका में इस देश के लोग साम

बन जाने के डर से अपनी जातीयता छिपा लेते थे। मुसलमान अपने को अरब कहते थे, पारसी वहाँ ईरानी बनते थे। हिन्दू देश के बने? आपस में वे पंजाबी, मद्रासी भले बनें, वहाँ के गोरों के लिए सभी सामी थे और उनके साथ सामी का वहाँ वर्ताव था। लोगों के मन से भय दूर करने में ही यह जीवन बीत गया। भारतीय विवाह जब अफ्रीका में गैर-कानूनी बन गया; उनके भीतर धर्म का भाव जागा। स्त्रियाँ भी मेरे प्रचार में आईं क्योंकि उस कानून से वे धर्मपत्नी की जगह रखेलिनें बन गईं, उनके बच्चे अवैध हो गये और मेरे सत्याग्रह का पहला जत्था देवियों का बना। बा भी सब के आगे चली। रखेलिन बनकर रहने में उसकी आत्मा भी काँप उठी। वहाँ गोरों ने मुझ पर अत्याचार नहीं किये, मेरी सारी जाति, मेरे सारे धर्म, मेरे संस्कार पर अत्याचार किया; पर वे मुझे डरा न सके, न मेरे साथियों को। भारत का बच्चा-बच्चा वहाँ निडर बना, देवियाँ निडर बनीं और तब गोरे डरने लगे। नेटाल के सत्याग्रह की सफलता से साम्राज्यवादी शक्तियाँ डरी थीं। हम लोग नहीं डरे।

पटेल—चम्पारन में भी यही हुआ। गोरों से जो जनता डरी थी वह अभय बनी।

गांधी—मेरी जाँच में पहले लोग आने से डरते थे फिर तो वह भीड़ बयान देने आने लगी कि अधिकारियों को पसीना आ गया। जाल से जो कानूनी अधिकार गोरों ने बना लिया था वह जनता के अभय बनते ही हवा हो गया। बम्बई में मेरे उतरने पर जनता का अपार समूह जो जुट आया, उसमें

लोग अभय बने और गवर्नर विलिंगडन के साथ मेरे राजनीति के गुरु भी डर गये।

आज़ाद—गोखले साहब के डरने की क्या वजह थी ?

गांधी—उनसे कहकर विलिंगडन ने मुझे भेंट के लिये बुलाया। विलायत से मैं बीमार आया था, अभी सीधे खड़ा भी नहीं हो पाता था। उनके पास मैं जब पहुँचा उन्होंने कहा "मिस्टर गांधी, यहाँ कोई आन्दोलन करना हो तो पहले आप मुझे सूचना दे लेंगे।" मैंने हँस कर कहा "स्मट्स को सूचना देकर मैंने वहाँ सत्याग्रह किया था। मैं अपने विरोधी को बिना सूचना दिये उसके विरोध में एक भी कदम नहीं उठाता।" डर दिखाये जाने पर मैं ज्वालामुखी बनता हूँ नहीं तो स्वभाव से तो मैं ठण्डी राख हूँ। मेरा हाथ ज़ोर से दबा कर वे देर तक हँसते रहे।

आज़ाद—गोखले साहब कैसे डर गये ? उनको आप अपना उस्ताद कहते हैं।

गांधी—विलिंगडन से मिलने के बाद की बात है यह। बम्बई में मेरे स्वागत का दृश्य, जनता के उत्साह और संख्या का विवरण जो विलायत तक के पत्रों में छपा, मेरे रूप में नई शक्ति का उदय उन्हें दीख पड़ा जिसे वे जनता की शक्ति कहने लगे। यह भी वे जान गये कि कांग्रेस अब मध्यम वर्ग के विद्वानों के हाथ से निकल कर जनता के हाथ में जायेगी। नेता अब वह बनेगा जो लोगों के हृदय में संकट से जूझ कर जगह बनायेगा। एक दिन जैसे कई दिनों की तैयारी के बाद उन्होंने मुझ से कहा...ऐसे शब्दों में, जैसे कि वे यह भी नहीं चाहते थे कि उनकी बात हवा भी सुने। कहने लगे—"गांधी, जिस जनता को तुम जनार्दन कहते हो उसके

हाथ के तुम नारायणास्त्र हो। नारायणास्त्र की रोक कहीं नहीं है...प्रलय भी हो सकती है उससे। इसलिये अपने मन से तुम्हें कुछ नहीं करना है। पहले देश भर की चुपचाप शान्त यात्रा कर अपने जनार्दन को सब ओर से देख लो। एक वर्ष जो राजनीति में न उतरने से उन्होंने मुझे रोक दिया इसमें उनका भय ही तो था कि पता नहीं देश में पैर धरते ही मैं क्या कर बैठूँ ? अब मुझे उनके चलाये चलना था। उसी वर्ष वे दिवंगत न हो गये होते तो मैं अब तक उनके चलाये चलता।

पटेल—अपने तेज से आप तेजस्वी रहें...इसीलिये भगवान् उन्हें भी ले गये और तिलक जी को भी।

गांधी—मुझे भी यही लगता है। मेरे जिस तेज की बात कर रहे हो सरदार ! वह मेरा कब था ? भगवान् का था और वह तेज अब उस दीनबन्धु ने समेट लिया। तभी देश में सब ओर भय छा गया है। मेरे इतना कहने पर एक मुसलमान...बूढ़े मुसलमान सज्जन प्रार्थना में परसों आये थे। इस बार का पाँच दिन का उपवास भी जैसे व्यर्थ जा रहा है, विदेशी शासन की कूटनीति पर जो बराबर सफल रहा, नलनि सरकार, सप्रू, अणे जैसे लोग जो बराबर निराशा देखते रहे मेरे आगाखाँ महल वाले उपवास से वे भी वीर बन गए, सरकार से अलग हट कर जो उन लोगों ने बयान दिया वह पढ़ कर मैं स्वयं चकित रह जाता था। इस बार तो जैसे सब कुछ उलटा जा रहा है।

पटेल—आपकी नीति के विरोध में जो कहे जा सकते थे, हिन्दू महासभा या संघ में जिनका प्रभाव था वे सभी आपकी सात शर्तों को मान गए। मुसलमान अब यहाँ सुरक्षित हैं।

हिन्दू शरणार्थी दोनों ओर से अब भी भागे आ रहे हैं। लोग उनकी दुर्दशा देखकर रो पड़ते हैं फिर भी शान्त हैं। किसी मुसलमान को अब यहाँ संकट नहीं है। उनका संकट तो अब आपके सिर रहा है।

गांधी—तब मुसलमान प्रार्थना में क्यों नहीं आते ? मैं उन्हें बार-बार बुला रहा हूँ, फिर भी वे नहीं आते, इसका अर्थ तो यह है कि मेरा विश्वास वे नहीं करते।

आज़ाद—नहीं···मेरे ईमान पर आप यकीन करें तो मैं कहूँ······

गांधी—आपके ईमान पर मरने के बाद भी जिस लोक में रहूँगा मैं विश्वास करता रहूँगा। यह न कहें। उन दिनों कांग्रेस के नेता सभी विद्या के समुद्र थे···फ्रांस की राज्य क्रान्ति, रूस और चीन की राज्य क्रान्ति सब की जीभ पर थी। पाँच घण्टे से अधिक खड़े होकर भाषण देने वाले अनेक रहे। पर···वीर, ऐसे वीर जो अंग्रेज़ों से बराबर दूर रहकर मुलक को सीना तानकर चलने को कहते थे···उनकी सभ्यता, उनकी शिक्षा, उनके ढोंग के जाल में नहीं फँसने वाले थे कितने ? अकेले आप मुझे मिले ऐसे जैसे देख के ही मैंने जान लिया— यह वीर की चाल है। चम्पारन के दिनों में राजन बाबू; खेड़ा सत्याग्रह, डांडी अभियान में सरदार और सरोजिनी ऐसे ही मिले। आप तो जन्म से इमाम पैदा हुए थे। धन-सम्पत्ति की चाह आपको थी नहीं। सरदार को भी मेरे साथ भिखारी बनना पड़ा।

आज़ाद—पंजाब से जो हिन्दू अभी भागे चले आ रहे हैं उनके बच्चों और औरतों के साथ वहाँ जो हो रहा है वह सब सुनकर यहाँ के मुसलमान मारे शरम के बाहर निकलना नहीं चाहते।

गांधी—मैं तो कहूँगा, लोग अपनी सारी शरम मुझे दे दें और अपना जी साफ कर लें। मुझ से पूछा जा रहा है कि मैं पाकिस्तान क्यों नहीं जा रहा हूँ और वहाँ के हिन्दुओं को भागने से क्यों नहीं रोक रहा हूँ? लोग समझते हैं कि मैं पाकिस्तान जाने से डरता हूँ। पाकिस्तान के लिए चल पड़ूँ और वह सरकार मुझे न घुसने दे। इसीलिए कई दिनों से कह रहा हूँ। जो कह रहा हूँ पत्र छाप भी रहे हैं। पाकिस्तान सरकार के अपने लोग भागे जा रहे है, जिस राज्य की प्रजा अपना सब कुछ छोड़कर भागी जा रही है उस राज्य को क्या कहा जायेगा? वह सरकार जब ठीक समझे, मुझे बुलाये, कहे कि मैं भागने वालों को रोकूँ। तब मैं अवश्य जाऊँगा।

पटेल—आपको वहाँ बुलाना होता तो पाकिस्तान नहीं बनता। कई सौ सालों से हिन्दू-मुसलमान एक साथ जैसे रहते आये, वैसे रहे होते। पर वहाँ तो भाव यह है कि हिन्दू-मुसलमान साथ रहने न पावें। वहाँ पाक मुसलमान रहें, पाक हिन्दू नहीं। काश्मीर पर धोखे से आक्रमण किया गया। राजा और जनता के नेताओं ने काश्मीर को भारत में मिला लेने की प्रार्थना की। पाकिस्तान की सेवा से दस हिन्दू घर लूटे गये तो सौ मुसलमान घर। अत्याचार की बातें आप सुनते नहीं, इस डर से मैं चुप हो जाता हूँ।

गांधी—हिन्दुओं के भाग आने से पाकिस्तान का व्यवसाय चौपट हो जायेगा। खेती-बारी मारी जायेगी। उनके राष्ट्र की शक्ति घटेगी। इतिहास में यह सब आकर रहेगा।

आज़ाद—तवारीख की फिक्र जब वे करने लगेंगे, उनकी लीग का जादू मिट जायेगा। चार पीढ़ी पहले जो हिन्दू था वह पलक

मारते ऐसा पाक मुसलमान बन गया कि अपने बाप-दादा की धरती को काटने लगा। यह सब सनक है। पचीस-पचास का जुट एक साथ बड़ी जगहों पर पहुँच जाने के लिए, ज़िन्दगी के मजे लेने के लिए जो बहिश्त में भी न मिलें, अंग्रेज़ी हुकूमत से मिल गया। तवारीख में पाकिस्तान की पैदाइश इतनी ही मानी जायेगी।

गांधी—❀"ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किंचित् जगत्याम् जगत्।" सरदार !

पटेज—जी...

गांधी—याद है चौबीस वर्ष पहले जब मैं हिमालय में चले जाने को तैयार हो गया था। मेरे साथ के लोगों ने न जाने दिया। उनको दोष क्या दूँ ? भगवान को जो नाच मुझे नचाना था, चला गया होता तो कौन नाचता ? भगवान् के भरोसे रहने वाले को यह संसार छोड़ ही देना चाहिये।

आज़ाद—तब 'भारत छोड़ो' कौन कहता ?

गांधी—मैं अकेला भारत नहीं हूँ...जब तक जनता का विश्वास मुझ में है तभी तक और यह "भारत छोड़ो" प्रस्ताव भी नया नहीं है। हिन्दू विश्वविद्यालय वाला, साल भर की अवधि बिताने पर, मेरा जो भाषण हुआ मैंने वहीं कहा था। इस देश के अपने पहले भाषण में, मौलाना !

आज़ाद—सुना था, आपने जो राजा वहाँ आये थे, और वायसराय के सामने ऐसी बातें कह दी जो दूसरा कोई भी कहने में काँप जाता !

गांधी—राजा लोगों को तो अपनी राजधानी की सड़कों पर झाड़ू लगाने को मैंने कहा ही, यह भी कह दिया कि भाषणों से

❀ इस सृष्टि में जो होता है, ईश्वर की इच्छा से होता है।

हम स्वराज्य के योग्य न होंगे, हमारे कार्य हमें इस योग्य बनायेंगे ! यदि देश की मुक्ति के लिए आवश्यक हुआ तो मैं अंग्रेज़ों को यहाँ से चले जाने के लिये कहूँगा···इस निष्ठा की रक्षा में मैं प्राण भी दे दूँगा। मेरी आत्मा की यह पुकार जो तब निकली बराबर निकलती आई। इरविन से जो दस बार मैं मिला, यह पुकार बराबर मेरे साथ लगी रही। सन् सोलह से लेकर ब्यालीस तक···

पटेल—छब्बीस वर्ष···

गांधी—हाँ, छब्बीस वर्ष 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव मेरे भीतर चलता रहा !

आज़ाद—मैं इसलिए आया हूँ कि आप कुछ दिनों के लिए सरदार की बात मान लें।

गांधी—लोक-सेवक पुलिस की छाया में चलकर लोक-सेवा की मर्यादा मिटाता है मौलाना ! मैं मान लेता हूँ कि सरदार का कहना सच है। किसी समय किसी अविवेकी तरुण के क्रोध का शिकार बन सकता हूँ, ऐसी हो जाय तो क्या यह धरती पाताल में चली जायेगी या आकाश फट पड़ेगा ? नित्य जो इस धरती पर अनेक जन मरते हैं उनमें उस दिन एक मैं भी रहूँगा। प्रकृति का शुद्ध कार्य होगा यह।

पटेल—(उद्वेग में) शुद्ध कार्य होगा !

गांधी—हाँ, सरदार मेरी मृत्यु,···कालिदास के शब्दों में मरण शरीरधारियों की प्रकृति है। जीवन तो उसकी विकृति का नाम है। इतना तो तुम मानते हो कि जो ऐसा हो ही गया तो मुसलमानों की रक्षा में होगा और मुझे देह के बन्धन से मुक्त करने वाला कोई हिन्दू होगा। मेरे बार-बार बुलाने पर

भी जब मुसलमान प्रार्थना में नहीं आ रहे हैं तो उनकी ओर से कोई संकट नहीं है।

पटेल—उस दिन बम फेंकने वाला हिन्दू था। सन्देह में जो दो और पकड़े गए वे भी हिन्दू हैं।

गांधी—हिन्दू धर्म का कोई रूप ऐसे आचरण की आज्ञा किसी को नहीं देता। साहित्य में ऐसे कर्म का कहीं चित्रण नहीं है। अपने पूर्वज तो शत्रु को ऊँचा आसन देने की बात कह गए हैं।

पटेल—आपकी प्रार्थना में भाग लेने वाले जो लोग यहाँ आते हैं, सभी शिक्षित होते हैं। अशिक्षित जनता तो इस भवन के बाहर खड़े होने में भी डरती है।

गांधी—हूँ, तब मेरा भावी घातक शिक्षित हिन्दू तरुण होगा। (सोच कर) तुम्हारा कहना असंगत नहीं है सरदार! शेक्सपियर के नाटकों को वह पढ़ चुका होगा। सभा में बैठे सीज़र को जैसे ब्रट्स ने शेक्सपियर के नाटक में धोखे से मार दिया था वैसे ही वह भी मेरे जैसे अपने देश के शत्रु को धोखे से मार देगा। अंग्रेजी साहित्य जो यहाँ विश्व-विद्यालयों की शिक्षा का प्रधान विषय बन गया है उससे इस देश के तरुण ब्रूट्स, मैकबैथ बनने लगे हैं। ये जो न कर बैठें सब थोड़ा है।

पटेल—आपकी प्रार्थना का समय चला आ रहा है, कुछ निश्चय अब हो जाना चाहिए। मैं बाहर घोषित करा देता हूँ आप अस्वस्थ हो गए हैं। आज प्रार्थना में न जायेंगे।

गाँधी—(ओंठ पर उंगली रख कर) असत्य से मेरी रक्षा करना चाहोगे?

पटेल—आप स्वस्थ नहीं हैं। इस उपवास के बाद से आप स्वस्थ नहीं हुए। इसमें झूठ क्या है?

गांधी—अट्ठारह को मेरा उपवास टूटा। बीस से मैं बराबर प्रार्थना में गया हूँ। लोग कुछ आशा लेकर वहाँ आते हैं कि उन्हें मैं कुछ उपयोगी बात बताऊँगा। पिछले दस दिन में जैसा रहा हूँ उससे बुरा नहीं हूँ। धर्म के साथ, अपनी अन्तरात्मा के साथ, भगवान् की निष्ठा के साथ, मैं छल नहीं कर सकता। काली मन्दिर की बलि की निन्दा करने में मुझे प्राण का भय नहीं लगा, विश्वनाथ मन्दिर की गन्दगी की मैंने निन्दा की और नहीं डरा, प्रयाग के कुम्भ में जो कुछ देखा उसकी निन्दा करते मैं नहीं डरा, यरवदा आश्रम में अछूत दूदाभाई के परिवार को रख लेने पर जब सनातनी कुएँ का पानी रोकने लगे, आश्रम की सहायता वहाँ सेठों ने बन्द कर देने की धमकी दी, मैं तब नहीं डरा और इस बात पर तैयार हो गया कि किसी हरिजन बस्ती में सब के साथ बस जाऊँगा और वहाँ वही काम करूँगा जो उस बस्ती के हरिजन भाई करते हैं; तो अब मुझे नहीं डरना है सरदार! भगवान् सब समय मेरे साथ रहा है। अन्तिम समय उसकी सहायता आई है।

पटेल—मैं प्रार्थना कर रहा हूँ मुझे जी भर कह लेने दें।

गांधी—नहीं, तुम जितना अधिक कहोगे तुम्हारा कष्ट भी उतना ही अधिक बढ़ेगा। तुम अब कुछ भगवान् के चमत्कार सुनो जो मेरे जीवन में घट चुके हैं। जवाहरलाल उन चमत्कारों में रुचि लेने लगे हैं। विदेशी शिक्षा के बाद भी इस देश की संस्कृति में वे ढल रहे हैं। पता नहीं तुम नास्तिक क्यों होते जा रहे हो?

पटेल--आपकी छाया जब तक मुझ पर नहीं पड़ी थी मैं नास्तिक था ! विदेशी दासता के मूल में मुझे देशी पाप दिखाई पड़ते थे ।

गांधी--सूर्य अपने किस पाप से नित्य डूबता है सरदार ! धरती के किस पाप से रात आती है ? कहोगे प्रकृति के नियम से । प्रकृति के उसी नियम से यह देश कभी जगद्गुरु बना, तब इसका तेज़ मध्याह्न के सूर्य-सा दूसरों से न सहा गया । सूर्य के तेज की तरह इस तुम्हारे देश के धर्म और संस्कृति आदि सबका तेज मन्द पड़ा और यहाँ रात आ गई जो हमारी इतनी पुरानी दासता बन गई ।

पटेल--रुकें थोड़ी साँस लें, तब...कण्ठ से शब्द काँप कर निकल रहे हैं

आज़ाद--बा के हाथ से फल का रस लेकर जब उपवास तोड़ते थे, जल्दी ताकत आ जाती थी । इस बार मेरे हाथ से गिलास लिए…

गांधी--बिना पहले कहे मैंने कुछ नहीं किया मौलाना ! सरदार के सामने वहाँ हरिजन बस्ती में मैंने कह दिया था कि इस बार जो उपवास तोड़ना पड़ा तो बा का काम मौलाना को करना पड़ेगा । होनी का आभास मुझे पहले मिल जाता है । उसे रोक देना मेरी शक्ति में चाहे न हो ।

[देवदास गांधी का भय और चिन्ता के भाव में प्रवेश । उनकी आँखें सहमी-सी कमरे में घूम जाती हैं । गांधी ध्यान से उनकी ओर देखते हैं । पटेल घूम कर उनकी ओर देखते हैं, फिर सिर झुका लेते हैं । आज़ाद उनकी ओर देख कर मुस्करा पड़ते हैं ।]

देवदास—जानना चाहता हूँ, आप लोगों ने क्या तय किया ?

पटेल—(सिर झुकाये) बापू नहीं मान रहे हैं।

देवदास—नहीं मान रहे हैं, हम लोगों को अनाथ करना है क्या ? सवेरे से पचास व्यक्ति मेरे पास आ चुके; सबके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। फोन से कितनों ने सचेत किया। अमृतसर में पं० नेहरू ने जो कल भाषण दिया, हिन्दुओं और सिक्खों के विरोध में जिन कड़े शब्दों का प्रयोग किया, जैसे उस समय वे अहिंसा का परम-धर्म भूल गये थे या उपस्थित हिन्दू और सिक्ख जनता में मान-अपमान का भाव नहीं था—वे लोग शान्त रहकर सब सुनते-सहते चले गए। न्याय का अधिकार सब को है और अहिंसा की तुला सब के लिए समान है।

गांधी—सवेरे उस भाषण को पढ़ गया। कड़ी बातें कही गई हैं। लोगों के हृदय को चोट लगी होगी।

देवदास—पाकिस्तान के भय के साथ आपका भय लोगों पर छा गया है। जवाहरलाल जी ने जो कुछ कहा आपके भय से कहा। नहीं तो इतने कड़े शब्दों का प्रयोग वे कभी नहीं करते।

गांधी—(भरे कंठ से) मेरे अभाग्य पर व्यंग्य न कर देवदास।

देवदास—(बायें हाथ से छाती छूकर) यह देह आप ही की है। आपके तन से इस तन का साँचा बना। इसलिए मैं आपसे लड़ूँगा…जब और सब डर गए हैं आपसे…मौलाना भी, सरदार भी…

गांधी—तुम कह रहे हो कि मेरे साथी मुझसे डर गए हैं ?

देवदास—केवल मैं नहीं कह रहा हूँ धरती कह रही है, आकाश कह रहा है। (खिड़की की ओर हाथ उठाकर) दिन में भगवान् सूर्य कह रहे हैं और रात को चन्द्रमा के साथ तारे कहते हैं। मौलाना और सरदार के मुँह की रेखा

देखिये जो अपनी कहानी अपने पीले रंग से कह रहे हैं। सब ओर से यही बात आ रही है कि आपके प्राण संकट में हैं, पर आप सुनते नहीं।

गांधी—धर्म की बाधा सुनने का स्वभाव मेरा नहीं है देवदास। गीता में अहिंसा देखने वाला हिंसा से कभी नहीं डरेगा।

देवदास—बा होती तो यहाँ प्राण दे देती। (आँख से आँसू बह उठते हैं)

गांधी—पुत्र हो, पिता के धर्म के राहु न बनो। प्राण के भय से प्रार्थना में न जाने का अर्थ होगा उस रक्षक में, भगवान् में, श्रद्धाहीन हो जाना। श्रद्धा के मिटने के पहले मुझे मिट जाना है। अब तुम चले जाओ यहाँ से। मौलाना और सरदार भी जाएँ। मैं थोड़ी देर ध्यान में बैठकर प्रार्थना-मंच पर जाऊँगा। देश का एक भी हिन्दू या सिक्ख यह समझे कि मैं उसके देश की हानि कर रहा हूँ…देशद्रोही हूँ, तो मुझे इस धरती पर जीवित रहने का अधिकार नहीं है।

देवदास—आप पहले कह चुके हैं कि पिता का धर्म पुत्र से पूरा होता…

गांधी—हाँ, यह मेरे धर्म का कहना है जिसे पूर्वज मानते आये…

देवदास—तब आपके धर्म की जो हानि होगी उसकी पूर्ती मैं करूँगा।

गांधी—हा…हा…हा…बड़े भोले हो देवदास! मेरे प्रति, मेरे पितरों के प्रति जब तुम पितृ-कर्म करोगे तब हम सब का धर्म पूरा होगा। तुम्हारे शुभ कर्मों से हमारा स्वर्ग बना रहेगा। जब तक मैं जी रहा हूँ वैसे सभी कर्म अभी मेरे हैं।

तुम्हें तीर्थ व्रत का भी अधिकार नहीं है। राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिये कितना सहा ? शिवि ने, दधीचि ने कितना सहा ? राजा भर्तृहरि को कितना सहना पड़ा था ? तुम मेरे सत्य और धर्म के शरीर की, यश और तप के शरीर की चिन्ता करो जो काल के मिटाये न मिटे। यह जो जीव का कारागार है, पानी के बुलबुले जैसा, किसी क्षण छितरा जायेगा, इसकी चिन्ता मनस्वी नहीं करते। यह फटा-पुराना वस्त्र रहा, न रहा। इसे छोड़ कर दूसरा धारण कर लेने में जीव को कौन रोकेगा ?

देवरास—गीता का तत्व-दर्शन सब कहीं व्यवहार में लाया जाय...

गांधी—जो तत्व-दर्शन व्यवहार न बन जाय वह केवल बुद्धि विलास है। तुम जानते हो, धर्म, दर्शन, साहित्य सबकी कुंजी मैं व्यवहार ही मानता हूँ। पर अब तुम जाओ। मुझे ध्यान में बैठना है।

देवरास—तब मैं भी प्रार्थना में साथ रहूँगा।

गांधी—यह नहीं होगा। जो लड़कियाँ रहती हैं, वही रहेंगी। तुम प्रार्थना में कभी नहीं आये तो आज एक दिन वहां रहकर मुझे कलंकित न करो। गांधी डर गया है। बेटे के साथ प्रार्थना-मंच पर आ रहा है। यह सुनना मैं नहीं चाहता।

देवरास—तब तो मेरे लिये कोई गति नहीं है।

गांधी—मैं जो कह रहा हूँ उसे धर्म से, श्रद्धा से स्वीकार करो। वही करो जिसमें मुझे सुख मिले, सन्तोष मिले, मेरा धर्म बचा रहे।

देवराज—बा का मरना अब अखर रहा है।

गांधी—वह मेरे धर्म में कभी बाधक बनी ? एक भी प्रसंग तुम बता सकोगे ? इक्कीस दिन के उपवास उसके सामने चले। कब कहा उसने उपवास तोड़ देने को ? भगवान् की पूजा करती रही, तुलसी को जल, धूप, दीप देती रही। कर सको तो भगवान् से प्रार्थना मेरे लिये तुम भी करो ! पर मझ पर शासन न चलाओ। छोड़ो मुझे राम भरोसे और होनहार तुम टाल न सकोगे। इसलिए उसकी इच्छा पर अपने को भी छोड़ दो और उसकी जय बोलो।

देवदास — जो आज्ञा (झुक कर पैर छू कर घूम पड़ते हैं और बीच वाले द्वार पर पहुँच कर हाथ से आँख पोंछते हैं।)

गांधी—अब आप लोग भी जायें मौलाना !

मौलाना—सरदार जायें...मैं तब तक रह जाऊँ।

गांधी—आप मंत्री हैं, मेरे साथ प्रार्थना में आप न रह सकेंगे। यह बात सरदार के लिए भी है।

सरदार—सरोजिनी को फोन कर दूँगा।

गांधी—नहीं...मन उनकी ओर लगा है और खिंच भी रहा है। अब कल देखेंगे...आज रहने दो।

[पटेल के साथ आज़ाद उठते हैं। गांधी आज़ाद का हाथ पकड़ कर उनकी ओर देखते हुए हँसने लगते हैं।]

आज़ाद—आज आप को छोड़कर जाने का दिल नहीं होता।

पटेल—मेरे पैरों में तो जैसे मन मन भर की बेड़ी पड़ी हैं।

गांधी—आप मुझे खुदा पर छोड़े जायें मौलाना ! और सरदार भगवान् पर। आप लोग यहाँ से हँसते हुए बाहर निकलें। भगवान् जो करे उसमें हम सब का भला होगा।

[मौलाना, पटेल, हाथ जोड़ कर बाहर निकलते हैं। गांधी के हाथ भी जुड़ जाते हैं और ओंठ खुल जाते हैं, मुँह में दो दाँत

दिखाई पड़ते हैं और सब गिर गये हैं। बालक-सी निर्दोष हँसी गांधी के मुँह से निकलती है। मौलाना, पटेल, कमरे की सीढ़ी उतर कर प्रार्थना-मंच की ओर देखने लगते हैं। यहाँ तीन ओर से लोग घेरा बनाकर खड़े हैं। इधर का मंच खुला है, गांधी के जाने के लिये। गांधी सुखासन पर आंख मूँद कर दोनों हाथ आगे कर बैठ जाते हैं।]

पटेल—कितने लोग होंगे वे? (मंच की ओर हाथ उठाकर)

आज़ाद—अभी कोई तीस...दस मिनट में तीन सौ हो जायेंगे। सवारियाँ आने लगीं, अब भीड़ बढ़ेगी।

पटेल—सादे वेश में खुफिया विभाग के पाँच सिपाही रहेंगे, इसका आदेश तो मैं दे चुका हूँ। अब देर हो गई नहीं तो बाहर सड़क पर ही लोग...ऐसे जिन पर सन्देह होता रोक कर देख लिये जाते।

आज़ाद—(मंच की ओर हाथ उठाकर) वहाँ जो लोग पहुँच गये हैं उनके साथ छेड़-छाड़ अच्छी नहीं होगी।

पटेल—समझ रहा हूँ...नहीं तो यही बहाना बनाकर अनशन चलने लगे तो फिर...

आज़ाद—बापू बहाना नहीं बनाते सरदार।

पटेल—मैं इतना घबड़ा गया हूँ कि जो न कहना चाहिये कह देता हूँ। बहाना तो नहीं...

आज़ाद—वहाँ लोगों की तालाशी चाहें न लें कुछ जाँचना भी उनके लिये कुछ कर बैठने की वजह बन जायेगी।

पटेल—कुछ कर बैठने में उनका अनशन भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि इसी बात पर वह सरकार की निन्दा प्रार्थना में ही करने लगें।

आज़ाद—यह भी मुमकिन है।

पटेल—सवेरे कहने लगे बम इसलिये फेंका जा रहा है कि लोग डर कर उनकी प्रार्थना में न आयें। ऐसा हुआ...डरकर लोगों ने उनकी बात सुनना छोड़ दिया तो ऐसे जीने से तो उनका मरना ही ठीक है।

आज़ाद—यह भी हस्ती है सरदार! जिस पर ऊपर से हवाई जहाज़ गोले बरसाते रहें फिर भी इसे डर न होगा और इसका जादू लोगों पर ऐसा है कि उस हालत में भी लोग इसे न छोड़ेंगे।

पटेल—अंग्रेज़ी राज्य का जो भय देश में समा गया था, हम लोग भी जिस से नहीं बचे थे इन्होंने उस भय को ऐसा भगा दिया जैसे सूरज निकलते ही अंधेरा भाग जाता है।

आज़ाद—सूरज के निकलने के पहले ही अंधेरा भाग जाता है। अभी गांधी अफ्रीका में ही थे, उनको फ़तह जो वहाँ हुई उसी से मुल्क का खौफ भाग गया। सूरज अभी यहाँ नहीं निकला था तभी अंधेरा भाग गया। हम लोगों को यहाँ देख कर लोग चौंक रहे हैं, अब चलना चाहिये।

पटेल—हाँ अब चलें। उनके साथ चमत्कार बराबर होते रहे हैं, फिर होंगे। चिन्ता की कोई बात नहीं है। (मंच की ओर हाथ उठा कर) जहाँ उनके इतने भक्त हैं उन पर आक्रमण करने वाले के नीचे से धरती भाग जायेगी।

[मौलाना और पटेल चले जाते हैं। टाँगा, रिक्शा, मोटर से लोग उतर कर प्रार्थना मंच की ओर बढ़ते हैं। दो गोरे आकर मंच के बायें चहारदीवारी के निकट खड़े होते हैं। मंच के तीन ओर भीड़ बढ़ती जाती है। कमरे की खिड़कियों से लोग झाँक

कर गाँधी का दर्शन करते रहते हैं। दो नागरिक आते हैं और कमरे से लगे लताकुंज के आगे दूब पर खड़े होते हैं। दोनों की अवस्था प्राय: पच्चीस वर्ष की है। शरीर पर कपड़े उन्हें ऊँची कक्षा के विद्यार्थी बता रहे हैं या शिक्षा की समाप्ति पर किसी सरकारी विभाग के कर्मचारी ! दोनों संकेत से कुछ कहते हैं।]

पहला—गृह मंत्री और शिक्षा मंत्री दोनों यहाँ इस समय कैसे आ गये ?

दूसरा—मंत्री कोई रहे, मंत्री बनाने वाला महापुरुष तो इस कमरे में है पैर के अंगूठे से जिसे टीका लगा देगा वह ही मंत्री बन जायेगा।

[एक स्त्री बच्चे को गोद में लिए एक ओर खड़ी हो जाती है।]

पहला—(स्त्री की ओर संकेत कर) उधर देखो, यह देवी जी ठेठ देहात से बच्चा लिए धमक गईं। घर पर रहकर खेत काटना या चक्की पीसना नहीं बना, यह भी प्रार्थना-सभा में मन्त्र सुनेंगी और राजनीति की बातें। गाँधी जी ने तो कहा था कि वे राष्ट्रपति का पद किसी भंगी की लड़की को देना चाहेंगे !

दूसरा—हो सकता है, इस बेचारी ने सुन लिया हो और इसी लिए आ धमकी हो ?

(दोनों धीमे स्वर में हँस पड़ते हैं। स्त्री सिकुड़ कर सिर नीचे कर लेती है।)

स्त्री—(उन दोनों के पास डरती-डरती) महात्मा जी का दरसन कइसे मिलो बाबू....

पहला—(मुस्करा कर) चली जाओ इसी कमरे में तो हैं। कोई रोक नहीं है, घुस जाओ...

स्त्री—डर लागत हय बाबू…हम हियें से देखि लेब…

[कमरे में कुछ ध्वनि सुनाई पड़ती है। दोनों तरुण सजग होकर पीछे हट जाते हैं। वह स्त्री और पीछे सिमट कर खड़ी हो जाती है। दो कुमारियों के कन्धे पर हाथ रखकर गांधी धरती पर देखते हुए निकलते हैं। चहारदीवारी के निकट दोनों गोरे सजग होकर सीधे खड़े होते हैं। गांधी नीचे उतर कर लताकुञ्ज वाले भाग के बाहर दूब पर चलने लगते हैं। दोनों तरुण हाथ जोड़ते हैं जिसे गांधी देखते नहीं। वह स्त्री उत्साह और आनन्द में आगे बढ़ कर बच्चे का सिर धरती पर टिका देती है और अपना सिर भी। दोनों तरुण इस दृश्य को देखकर मुस्करा पड़ते हैं। गांधी, दोनों लड़कियों के बीच में सिर झुकाये, मंच की ओर बढ़ते हैं। उपस्थित भीड़ में कुछ लोग धीमे स्वर में महात्मा गांधी की जय बोल उठते हैं। गांधी जैसे चेत में आकर जनता की ओर देख कर मुस्करा पड़ते हैं। तब मंच की सीढ़ी आ जाती है।]

गांधी—(लड़कियों से) सम्भाल कर चढ़ो।

लड़कियाँ—जी…

[रुक कर गांधी तीन सीढ़ी चढ़ कर मंच पर पहुँचते हैं। भीड़ में गति का संचार होता है। इधर से भी लोग घेर लेते हैं। क्षण भर सन्नाटा छा जाता है। दूसरे ही क्षण पिस्तौल चलने की ध्वनि…एक क्रम से चार बार सुनाई पड़ती है।]

गांधी (नेपथ्य में)—हे राम !

[यह कण्ठ की ध्वनि सब ओर से जैसे धरती और आकाश से निकलने लगती है। गिरने की ध्वनि जन-समूह की गति से जैसे दब जाती है। भीड़ में कुछ लोग अपना सिर-पीटने लगते हैं। कई कटे पेड़ की तरह धरती पर गिर पड़ते हैं। दोनों गोरे

भय से काँपने लगते हैं। दूर पर खड़ी स्त्री का बच्चा ज़ोर से रो पड़ता है। वह स्त्री भय से काँप कर बच्चे के मुँह पर हाथ रखती है। भीड़ इधर-उधर जैसे झूले में पेंग लेने लगती है।]

पहला तरुण—अरे क्या हुआ !

दूसरा—पिस्तौल छूटना नहीं सुना ?

पहला—हत्यारे का निशाना महात्मा तो नहीं बने ?

दूसरा—(काँपते स्वर में) कौन जाने। उस दिन बम फटा। दो दिन दो पकड़े गए।

(भीड़ की ओर से एक पुरुष भागता हुआ आता है और सारी देह कँपा कर बोलना चाहता है, पर धरती पर बैठ कर सिर दोनों हाथों में थाम लेता है।)

पहला—(उसके निकट पहुँच कर) क्या हुआ जी···बोल···बोल बोलो भी क्या हुआ ?

दूसरा—(बैठ कर उसे पकड़ते हुए) भाई, क्या हुआ कहो न ?

वह पुरुष—ऐं···ऐं···हाय ! हाय ! मार दिया···महात्मा को··· मार दिया···गोली···गोली—

(वहीं धरती पर सिर टिका कर सिसकने लगता है। दोनों तरुण मंच की ओर बढ़ते हैं।)

नेपथ्य में—आप लोग हटें···हवा आने दें डाक्टर···डाक्टर···

नेपथ्य में—पकड़ लिया गया हत्यारा। अभागा हँस रहा है···

(लड़कियों के रोने की ध्वनि सुनाई पड़ती है। पुलिस मंच पर पहुँच कर लोगों को हटाकर इधर-उधर करती है। लोग पीछे हट कर भी आगे बढ़ते हैं। बार-बार सिपाही लोगों को चारों ओर हाथ से हटाते हैं। पर सारी भीड़ ऐसी प्राण-हीन सी हो गई है जैसे प्रलय के पहले सभी जीवधारी चेतना शून्य हो उठे हों।)

नेपथ्य में—(अनेक प्रकार की ध्वनि एक ही साथ सुनाई पड़ती है। लड़कियों के साथ दूसरों के रोने-सिसकने की ध्वनि चल रही है।)

अब उठा लें…इधर से …उधर से…देह न झुके…

नेपथ्य में—(कई कण्ठों की ध्वनि) मृत्युञ्जय गांधी की जय हो… जय हो…जय हो।

(इस जत-ध्वनि में गीता पाठ की ध्वनि दब जाती है।)

(पर्दा गिरता है।)

अभ्यास

१. मृत्युञ्जय से लेखक का क्या अभिप्राय है ?

२. इस नाटकाँश को पढ़ कर महात्मा गांधी के व्यक्तित्व पर अपने विचार लिखिए।

३. पटेल तथा आजाद के रोकने पर भी क्या गाँधी जी का प्रार्थना-सभा में जाना उचित था ?

४. महात्मा जी को गोली मारने वाले कौन थे ? उन्होंने यह अनुचित काम क्यों किया ?

५. ऐसी मृत्यु मानव को 'अमर' कैसे बना देती है ?

————

पद्य वाटिका

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि औध'

(१)

फूल और काँटा

जन्म लेते हैं जगह में एक ही,
एक ही पौदा उन्हें है पालता।
रात में उन पर चमकता चाँद भी,
एक ही सी चाँदनी है डालता ॥ १ ॥

मेंह उन पर है बरसता एक सा,
एक सी उन पर हवायें हैं बहीं।
पर सदा ही यह दिखाता है हमें,
ढंग उनके एक से होते नहीं ॥ २ ॥

छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ,
फाड़ देता है किसी का वर बसन।
प्यार-डूबी तितलियों का पर कतर,
भँवर का है बेध देता श्याम तन ॥ ३ ॥

फूल लेकर तितलियों को गोद में,
भौंर को अपना अनूठा रस पिला।
निज सुगन्धों औ' निराले रंग से,
है सदा देता कली जी को खिला ॥ ४ ॥

है खटकता एक सब की आँख में,
दूसरा है सोहता सुरसीस पर।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥ ५ ॥

(२)

काँटा और फूल

है न काँटों सा उभरना काम का,
क्या किया जब दूसरों को दुःख दिया।
सीख लेवें क्यों न खिलना फूल सा,
जब किया तब और को पुलकित किया ॥ १ ॥

रंग जिन पर हो भलाई का चढ़ा,
सब जगह उनकी घटी सब दिन रही।
डालियों में है न काँटों की कमी,
पर दिखाते फूल हैं दो चार ही ॥ २ ॥

जब उठीं आँखें हमें काँटे मिले,
नोक अपनी बेतरह सीधी किये।
पर नहीं जाना निराले फूल ये,
कब खिले औ' किस समय कुम्हला गए ॥ ३ ॥

क्या बतावें, है कलेजा जल रहा,
[illegible] काँटों का हुआ इनके किये।
धूप निकली, लू चली, आँधी उठी,
हा ! इन्हीं सुकुमार फूलों के लिए ॥ ४ ॥

दूर आँखों से न वह काँटा हुआ,
नोक से जिसकी लहू कितना बहा।
पर बिचारी तितलियों के वास्ते,
दो दिनों भी फूल का न समां रहा ॥ ५ ॥

किस लिये काँटे बहुत दिन तक रहे,
आह ! मेरा जी बहुत खिजला गया।
किस लिये इतना अनूठा फूल यह,
आज फूला और कल कुम्हला गया ॥ ६॥

दो दिनों भी फूल रह पाया नहीं,
पर बहुत दिन तक रहे काँटे अड़े।
जो भले हैं, सब जिन्हें हैं चाहते,
कब न जीने के उन्हें लाले पड़े ॥ ७॥

मैथिलीशरण गुप्त

(३)

ध्वज-वंदना

यह पुण्य पताका फहरे,

मुक्त वायु-मंडल में अपनी मानस-लहरी लहरे।
जय-मैत्री-करुणा धारामय यह ध्वज-चक्र हमारा,
कभी क्रांति का सूर्य यही है, कभी शांति-शशि-तारा।
हमें विजय का सूत्र मिला है, इसी चक्र के द्वारा,
रक्षक यही सुदर्शन अपना, किरण-कुसुम सा प्यारा।
काल-चक्र यह हाथ हमारे, लक्ष्य क्यों न थक थहरे।

यह पुण्य पताका फहरे!

कर्म-क्षेत्र हरा है अपना, ज्ञान शुभ्र मनमाना,
बलि, बलवती विनीत, भक्ति का फल केसरिया बाना।
इस त्रियोग के तीर्थराज में, हमें स्वधर्म निभाना,
अपनी स्वतन्त्रता से सबका अब मुक्ति-मन्त्र है पाना
सब समान भागी जीवन के, यही घोषणा घहरे।

यह पुण्य पताका फहरे!

त्याग हमारा धर्म, किन्तु हम हरण कभी न सहेंगे,
दानवता से मानवता का वरण कभी न सहेंगे।

किसी आततायी का तुष्टीकरण कभी न सहेंगे।
और कभी भी व्यर्थ किसी का मरण कभी न सहेंगे।
वह नरता ही क्या बर्बरता जिसके आगे ठहरे।

यह पुण्य पताका फहरे !

इस ध्वज पर जूझे स्वजनों का ध्यान जहाँ जाता है,।
मस्तक ऊँचा होने पर भी मन भर-भर आता है।
निर्भय मृत्यु-वरण कर ही नर अमर कीर्ति पाता है।
ऐसे पुत्रों की ही आशा रखती भू माता है।
भू माता का यह अन्चल-पट छाया करके छहरे

यह पुण्य पताका फहरे !!

रामनरेश त्रिपाठी

(४)

अन्वेषण

मैं ढ़ूँढता तुझे था जब कुंज और बन में,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।

तू आह बन किसी की मुझ को पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता संगीत में भजन में।

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में।

बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू,
आँखें लगी थीं मेरी तब मान और धन में।

बाजे बजा बजा के मैं था तुझे रिझाता,
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में।

मैं था विरक्त तुझ से जग की अनित्यता पर,
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में।

बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था,
मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहाँ चरण में ?

तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं,
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में !

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था,
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन में।
क्रीसस की हाथ में था करता विनोद तू ही,
तू अन्त में हँसा था महमूद के रुदन में।

प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना,
तू मचल रहा था मंसूर की रटन में।
आखिर चमक पड़ा तू गांधी की हड्डियों में,
मैं तो समझ रहा था सुहराब पील तन में।

कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है?
हैरान होके भगवन् आया हूँ मैं शरण में।
तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में,
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में।

तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुस्लिमों में,
तू प्रेम क्रिश्चियन में, है सत्य तू सुजन में।
हे दीनबन्धु ऐसी प्रतिमा प्रदान कर तू,
देखूँ तुझे दृगों में, मन में, तथा वचन में।

कठिनाइयों दुखों का इतिहास ही सुयश है।
मझ को समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में॥

श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त'

(५)

दुःख-सुख

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुःख
सुख-दुख की आँख मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख !

सुख-दुःख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण,
फिर घन में ओझल हो शशी,
फिर शशी से ओझल हो घन ॥

जग पीड़ित है अति दुःख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से
मानव-जग में बट जावें,
दुःख-सुख से औ' सुख दुःख से ॥

अविरत दुःख है उत्पीड़न
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुःख सुख की निशा दिवा में,
सोता गाता जग-जीवन।

यह साँझ उषा का आँगन
आलिंगन विरह-मिलन का।
चिर हास-अश्रु मय आनन
रे इस मानव-जीवन का !!

डा० रामकुमार वर्मा

(६)

उषे !

उषे, बतला यह सीखा हास कहाँ ?
इस नीरस नभ में पाया है,
तूने यह मधुमास कहाँ ?
अन्धकार के भीतर सोता
था इतना उल्लास कहाँ ?
सूने नभ में छिपा हुआ था,
तेरा यह अधिवास कहाँ ?
यदि तेरा जीवन जीवन है,
तो फिर है उच्छ्वास कहाँ ?
अपने ही हँसने पर तुझको
क्षण भर है विश्वास कहाँ ?

(७)

क्या पूजा क्या अर्चन रे !

क्या पूजा क्या अर्चन रे !
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे !

---

(८)

अनन्त की ओर

गरजता सागर, तम है घोर,
घटा घिर आई सूना तीर,
अंधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो, कैसे बेपीर ?

नहीं है तरणी कर्णाधार,
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्मम देव !
एक बस तेरा ही संदेश ।

हाथ में लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों को जोड़
लिए कैसे पीड़ा का भार,
देव आऊँ अनन्त की ओर ?

———

(६)

एक बार

कितनी करुणा, कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार !

हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में बसन्त
लुट जाता चिर संचित विराग,
आँखें देतीं सर्वस्व वार !
जो तुम आ जाते एक बार !

———

सुमित्रानन्दन पन्त

(१०)

स्वस्ति पाठ

गाओ जन-मंगल हे
शस्य हरित रहे सतत
स्वर्णिम भू-अँचल हे !
शान्त रहे नीला गगन,
शान्त सिंधु-वारि गहन,
शान्ति-दूत हों दिशि-क्षण,
विश्व शान्ति-शतदल हे ।

सृजन-कर्म-निरत जगत
घृणा-द्वेष स्वार्थ विरत
प्रीति-ग्रथित, हृदय प्रणत,
पूजित हो श्रमफल हे ।
भीति रहित हों जनमन,
वैभव-स्मित जग-जीवन,
शोभा अपलक लोचन,
कुसुमित दिन मंडल हे !

शाँत हो समर-प्रमाद,
शाँत मनुज का विषाद,
शाँत निखिल तर्क वाद,
शाँत स्वर्ग-भूतल हे ।

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'

(११)

शान्ति

(भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझा रहे हैं)

समर निंद्य है धर्मराज, पर
कहो शान्ति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित हो कर भी
बनी हुई सरला है ?

सुख-समृद्धि का विपुल कोष
संचित कर कल, बल, छल से,
किसी क्षुधित का ग्रास छीन,
धन लूट किसी निर्बल से ?

सब समेट, प्रहरी बिठला कर
कहती-कुछ मत बोलो,
शान्ति-सुधा बह रही, न इसमें
गरल क्रान्ति का घोलो !

हिलो-डुलो मत, हृदय-रक्त
अपना मुझ को पीने दो,
अचल रहे साम्राज्य शान्ति का
जियो, और फिर जीने दो !

सच है सत्ता सिमट-सिमट कर
जिनके हाथों में आई,
शान्ति-भक्त वे साधु पुरुष
क्यों चाहे कभी लड़ाई ?

सुख का सम्यक् रूप विभाजन
जहाँ नीति से नय से,
सम्भव नहीं, अशान्ति दबी हो
जहाँ खड्ग के भय से,

जहाँ पालते हों अनीति-
पद्धति को सत्ताधारी,
जहाँ सूत्रधार हों समाज के
अन्यायी, अविचारी,

नीति-युक्त प्रस्ताव सन्धि के
जहाँ न आदर पायें,
जहाँ सत्य कहने वालों के
शीश उतारे जायें,

जहाँ खड्ग-बल एकमात्र
आधार बने शासन का,
दबे क्रोध से भभक रहा हो
हृदय जहाँ जन-जन का,

सहते-सहते अनय जहाँ
मर रहा मनुज का मन हो,
समझ का-पुरुष अपने को
धिक्कार रहा जन-जन हो,

अहँकार के साथ घृणा का
जहाँ द्वन्द्व हो जारी,
ऊपर शान्ति; तलातल में
हो छिटक रही चिंगारी,
आगामी विस्फोट, काल के
मुख पर दमक रहा हो,
इंगित में अँगार, विवश
भावों के चमक रहा हो,
बढ़ कर भी संकेत, सजग हों
किन्तु न सत्ताधारी,
दुर्मति और अनल में दें
आहुतियाँ बारी-बारी,
कभी नये शोषण से, कभी
उपेक्षा, कभी दमन से,
अपमानों से कभी, कभी
शरवेधक व्यंग्य वचन से ॥
दबे हुए आवेग वहाँ यदि
उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़ काल बन मानव
अन्यायी पर टूटें।
कहो कौन दायी होगा
उस दारुण जगदहन का ?
अहँकार या घृणा कौन
दोषी होगा उस रण का ?
तुम विषण्ण हो समझ
हुआ जग-स्वाह तुम्हारे कर से,
सोचो तो, क्या अग्नि समर की
बरसी थी अम्बर से ?

अथवा अकस्मात् मिट्टी से
फूटी थी यह ज्वाला ?
या मन्त्रों के बल से जन्मी
थी यह शिवा कराला ?

कुरुक्षेत्र के पूर्व नहीं क्या
समर लगा था चलने ?
प्रतिहिंसा का दीप भयानक
हृदय-हृदय में बलने ?

शान्ति खोलकर खड्ग, क्रान्ति का
जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का
वह सर्जन करती है।

शान्ति नहीं तब तक जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो
नहीं किसी को कम हो

ऐसी शान्ति राज्य करती है
तन पर नहीं, हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर
श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर।

न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है,
जब तक न्यास न आता,
जैसा भी हो, महल शान्ति का
सुदृढ़ नहीं रह पाता।

कृत्रिम शान्ति सशंक आप
अपने ही से डरती है,

खड्ग छोड़ विश्वास किसी का
कभी नहीं करती है।
और जिन्हें इस शान्ति-व्यवस्था
में सुख-भाग सुलभ है,
उनके लिए शान्ति ही जीवन-
सार-सिद्धि दुर्लभ है।
पर जिनकी अस्थियाँ चबा कर
शोणित पीकर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह
समझो कुछ उनके मन का !
स्वत्व माँगने से न मिले,
संघात पाप हो जाये,
बोलो धर्मराज, शोषित वे
जियें या कि मिट जायें ?
न्यायोचित अधिकार माँगने
से न मिले तो लड़के,
तेजस्वी छीनते, समर को
जीत, या कि खुद मरके।
किसने कहा, पाप है, समुचित
स्वत्व-प्राप्ति-हित लड़ना ?
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना मरना ?
क्षमा, दया, तप, तेज, मनोबल
की दे वृथा दुहाई,
धर्मराज, व्यंजित करते तुम
मानव की कदराई।।

———

श्री हरिवंशराय बच्चन

(१२)

जुगनू

[१]

अंधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है?

उठी ऐसी घटा नभ में
छिपे सब चाँद और तारे,
उठा तूफान वह नभ में
गए बुझ दीप भी सारे,

मगर इस रात में भी लौ
लगाए कौन बैठा है?
अन्धेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

[२]

गगन में गर्व से उठ-उठ,
गगन में गर्व से घिर-घिर
गरज, कहती घटाएँ हैं,
नहीं होगा उजाला फिर,

मगर चिर-ज्योति में निष्ठा
जमाए कौन बैठा है?
अन्धेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

[३]

तिमिर के राज का ऐसा
कठिन आतंक छाया है,
उठा जो शीश सकते थे,
उन्होंने सिर झुकाया है,

मगर विद्रोह की ज्वाला
जलाए कौन बैठा है ?
अन्धेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

[४]

प्रलय का सब समाँ बाँधे
प्रलय की रात है छायी,
विनाशक शक्तियों की इस
तिमिर के बीच बन आई,

मगर निर्माण में आशा
दृढ़ाए कौन बैठा है ?
अन्धेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

[५]

प्रभंजन, मेघ, दामिनी ने
न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा ?
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोड़ा,

मगर विश्वास को अपने
बचाए कौन बैठा है ?
अन्धेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

[६]

प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई !
मगर पड़ प्रेम-बन्धन में
समझ किसने नहीं खोई ?

किसी के पथ में यूँ पलकें
बिछाए कौन बैठा है ?
अन्धेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है ?

———

(१३)

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है

[१]

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।
हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंज़िल भी तो है दूर नहीं
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी जल्दी चलता है।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

[२]

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे—
यह ध्यान परों में चिड़िया के, भरता कितनी चंचलता है।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

[३]

मुझ से मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किस के हित चंचल ?
यह प्रश्न शिथिल करता पग को, भरता उर में विह्वलता है।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

———

श्री सोहन लाल द्विवेदी

(१४)

युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि-पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गए कोटि-दृग उसी ओर,

जिसके शिर पर निज धरा हाथ
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ,

हे कोटिचरण ! हे कोटि-बाहु !
हे कोटिरूप ! हे कोटि-नाम !
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि,
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम !

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटी देख
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख !

तुम बोल उठे युग बोल उठा
तुम मौन बने युग मौन बना !
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युग धर्म तना,

युग परिवर्तक, युग—संस्थापक,
युग—संचालक हे युगाधार !
युग-निर्माता, युग-मूर्ति, तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार।

तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नव-जीवन की नींव
ले नव-चेतन की दिव्य दृष्टि !

धर्माडम्बर के खण्डहर पर
कर पद-प्रहार कर धराध्वस्त
मानवता का पावन मन्दिर
निर्माण कर रहे सृजन-व्यस्त !

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी
गढ़ते तुम अपना रामराज
आत्माहुति के मणि-माणिक से
मढ़ते जननी का स्वर्णताज !

तुम कालचक्र के रक्त-सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़-बढ़ !

पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय-दान
अधमरे देखते हैं तुमको
किसने आकर यह किया त्राण ?
दृढ़ चरण, सुदृढ़ कर-संपुट से
तुम कालचक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा के पुण्य श्लोक।

कंपता असत्य, कंपती मिथ्या,
बर्बरता कंपती है थरथर !
कंपते सिंहासन, राजमुकुट
कंपते, खिसके आते भू पर !

है अस्त्र-शस्त्र कुंठित-लुण्ठित,
सेनायें करती गृह - प्रयाण;
रण-भेरी तेरी बजती है
उड़ता है तेरा ध्वज-निशान !

हे युग-द्रष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मन्त्र ?
इस राजतन्त्र के खंडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतन्त्र !

———

सुभद्राकुमारी चौहान

(१५)

बचपन

बार-बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की, सबसे मस्त खुशी मेरी॥
चिन्तारहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है, बचपन का अतुलित आनन्द॥
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था, छुआछूत किसने जानी।
बनी हुई थीं, अहा, झोंपड़ी और चीथड़ों में रानी॥
रोना और मचल जाना भी, क्या आनन्द दिलाते थे।
बड़े-बड़े मोती से आँसू, जयमाला पहनाते थे॥
दादा ने चन्दा दिखलाया, नेत्र-नीर-द्रुम दमक उठे।
घुली हुई मुस्कान देखकर, सबके चेहरे चमक उठे॥
आ जा बचपन एक बार फिर दे-दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली वह अपनी आकृति, विश्रांति॥
वह भोली सी मधुर-सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा तू मेरे मन का सन्ताप॥
मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन-बन सी फूल उठी वह, छोटी सी कुटिया मेरी॥

"माँ ओ" कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में, कुछ लिए हाथ में, मुझे खिलाने आई थी॥
पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा॥

मैंने पूछा यह क्या लाई, बोल उठी वह "माँ काओ"।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा-तुम्हीं खाओ॥

पाया बचपन मैंने फिर से, बचपन बेटी बन आया।
उसकी मञ्जुल मूर्ति देखकर, मुझमें नव जीवन आया॥

मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं, मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥

Bar Bar Aati Hai

नरेन्द्र शर्मा

(१६)

हिन्दू-मुसलमान

मैं हिन्दू हूं, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ
तुम मुझे वणिक औ' दहकानी !

सदियों हम दोनों साथ रहे
यह बात न अब तक पहचानी—

दोनों ही धरती के जाये,
हम अनचाहे मेहमान नहीं !

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

हैं अलग-अलग हम दोनों के
व्यवहार-मान, जीवन-दर्शन

सांस्कृतिक स्रोत दोनों के दो,
करते दो भावों का सिंचन !

पर दो होकर भी मिल न सके,
तो दोनों का कल्याण नहीं !

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

तुममें देशान्तर की समष्टि,
मैं कालान्तर का दृष्टि-दीप !

जीवन-सागर के दो मोती
हैं देश-कालगत युगल सीप !

मोती को हम मिट्टी समझे
क्या दोनों का अज्ञान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

इस्लाम-पूर्व की संस्कृतियां,
भाषाएँ तुमने अपनाई !

इस्लाम-पूर्व के शाहों की
गाथाएँ कवियों ने गाई !

फारस टर्की को अपनाया,
क्या अपना हिन्दुस्तान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

काफिर थे फिर भी अपनाये
इस्लाम-पूर्व के ईरानी !

तुमने मंगोलों से सीखी
रण-चतुराई औ' खाकानी !

इस्लाम-पूव के हिन्द देश की
क्यों तुमको पहचान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

मैं हिन्दू हूँ, बोदा हिन्दू
करता था तुमसे असह योग !

या छूत भूत से दबा हुआ,
घर घुसने पन का रहा रोग !

मेरी जागृति का अमृत किन्तु
होगा तुमको विष-पान नहीं !

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

अब तो सदियों की नींद खुली,
इतिहास, ज्ञान विज्ञान मिले !

मुरझाये थे जो प्रेम—फूल,
कर नव-जीवन-रस पान खिले !

गुल-कमल खिलेंगे साथ-साथ,
यह हिन्द अभी वीरान नहीं !

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

मैं देशान्तर-व्यापी मुस्लिम—
इतिहास करूँगा हृदयंगम !

पहले भी तो यवनों के संग
था हुआ हिन्दियों का संगम !

क्या हम दोनों, दोनों का ही
कर सकते वह सम्मान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?

तुमको है प्यारी खुद्दारी
मुझकी विनम्रता आभूषण !

तुम आसमान के अभिलाषी,
मुझको प्रिय हैं धरती के कण !

पर क्या भू में मिलती न देह ?
नभ में खो जाते प्राण नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

जग-क्रान्ति जगाने आई है,
उठ हिन्दू ! उठ ओ मुसलमान !

संकीर्ण भेद-सन्देह त्याग,
उठ महादेश के महा प्राण !

क्या पूरा हिन्दुस्तान न यह ?
क्या पूरा पाकिस्तान नहीं ?

मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

———

शिव मंगलसिंह 'सुमन'

(१७)

जीवन और गीत

अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !
अभी ब्रज-वीथियां सूनी
अभी सूना पड़ा मधुबन,
अभी झुलसे लता तरु-गण
अभी उजड़ा पड़ा उपवन ।
अभी सावन कहां ?
जिसके लिए बन मेघ छाता हूँ !
अभी जीवन कहां ?
जिसके लिये मैं गीत गाता हूँ !

कहाँ मधु से भरी प्याली
कहाँ उमड़ा हुआ यौवन ?
कहाँ तूफान में जीवन
कहाँ अरमान में आँधी
अभी मधु ऋतु कहां ?
दिन-रात पतझर ही मनाता हूँ !
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !

न पत्थर में कहीं पारस
न कर्षण-शक्ति चुम्बक में,
कहां लौ में जलन बाकी
कहां है स्नेह दीपक में ?

दिवाली भी कहां ?
जिसके लिए तन-मन जलाता हूँ ?
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !!

कहाँ है क्षोभ झरनों में
कहाँ सागर में अकुलाहट ?
कहाँ सरिता में विह्वलता
लिए अभिसार की आहट ?
कहां संगम ? अभी
अविराम प्यासा छटपटाता हूँ !
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !!

कहाँ कलियों में है शोखी,
कहाँ रस-ज्ञान उपलों में
कहाँ सौरभ है साँसों में
कहाँ मकरन्द मुकुलों में ?
कहाँ मधु ? बन मधुप
जिसके लिए मैं गुनगुनाता हूँ ?
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !!

कहां झंकार वीणा में
गमक तबलों मृदंगों में ?
अभी नव स्फूर्ति ताण्डव की
समा पाई न अंगों में,
अभी सम ताल यति—
गति हीन तानें ही सुनाता हूँ !

अभी जीवन कहाँ ?
जिस के लिए मैं गीत गाता हूँ !!

अभी मांगा न तृष्णा ने
अगम मधु-सिन्धु का मन्थन
अभी विष तक पचाने का
उठा उर में न आन्दोलन,
न जाने अग्नि—
चुम्बन से अभी क्यों जी चुराता हूँ !
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !

अभी केवल सुना है
कल्पतरु होता है नन्दनमें,
अभी लाया कहाँ हूँ
कामधेनु जग के आंगन में,
अभी तो शून्य में
ही दूध की गंगा बहाता हूँ !
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !!

अभी आकुल है काया-कल्प
करने को मही सारी,
कहां जीवन अभी तो
हो रही जीवन की तैयारी !
अभी जीवन कहां ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ !!

————

आरसी प्रसाद सिंह

(१८)

एक फूल के लिए न जाने !

एक फूल के लिये, न जाने, कितने फूल चुने अन्तर में !
एक लहर के लिए, न जाने, कितने ज्वार उठे सागर में !

मन विभोर कर गया फूल तो-
अपने रूप गन्ध से क्षण भर।
पर शूलों की कसक हृदय से,
जा सकती है क्या जीवन भर ?

एक घूंट के लिए न जाने कितने छाले पड़े अधर में ?

एक साँस के लिए मरण के
मुख में अगणित बार समाया।
एक सुरभि के लिए न जाने-
कितनी बार बसंत बुलाया।

एक गीत के लिए न जाने, कितने तार बजे हैं स्वर में ?

सुख के एक निमिष की आशा—
लायी कल्प-कल्प की पीड़ा।
अश्रु-सिन्धु में डूबी सौ-सौ—
बार मिलन के क्षण की क्रीड़ा।

एक किरण के लिए, न जाने, कितना तिमिर भरा अम्बर में ?

एक मुक्ति की घड़ी पड़ी है—
सौ सौ सृजन-मरण-बन्धन में।
कितने पतन-प्रलोभन आते—
प्रगति-शिखर पर एक चरण में।

एक स्वप्न के लिये सजाये युग युग मैंने पूजा घर में।
एक फूल के लिए न जाने कितने शूल चुभे अन्तर में ॥

—०—

गोपाल सिंह नेपाली

(१६)

लहर लहर हर नैया नाचे !

घूँघट-घूँघट नयना नाचे, पनघट-पनघट छैयां रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे !

[१]

बीच गगन में बदरा नाचे, बरसे मारे प्यार के,
पानी पीकर धरती नाचे, बिना किसी आधार के,
सूरज नाचे, चन्दा नाचे, नाचे सौन चिरैया रे !
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे !

[२]

दिन क्या फूटे, कुंकुम फूटे, छिटके रंग दिशाओं में,
सन्ध्या भी सिंदूर उड़ाती, आये मस्त हवाओं में,
उतरे रात सितारों वाली घूँघरू बांधे पैयाँ रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे !

[३]

नाचे मुकुट बदल कर मस्तक, सत्ता उछल कहीं नाचे,
जहां चलें तूफान-बवण्डार, पत्ता मचल वहीं नाचे,
पकड़-पकड़ आंचल पूनम का नाचे महल-मड़ैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे !

[४]

डूबा सूर्य निकल आता तो, मरने वाला कौन है,
रंग-बिरंगे परिवर्तन से डरने वाला कौन है?
नाचूँ जैसे मुझे नचाये, मेरा वेणु-बजैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

[५]

गंगा-यमुना, सागर नाचें, जिस धरती को घेरकर,
किसका हार पिरो लेगा तू, उसके रतन बिखेर कर,
सबका मीत बना कर नाचो, जीवन ताता-थैया रे,
लहर लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

[६]

जिसकी लहर उसी की नैया, डूबे कौन, डुबोये कौन!
जिसकी भंवर मुसाफिर उसके, फिर मांझी को रोये कौन,
भंवर-भंवर गलबहियां डाले, नैया पार लगैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

[७]

मांझी हो या तंग मुसाफिर, कोई रुके न पानी में,
कोई चले बुढ़ापे के संग, कोई भरी जवानी में,
बादल-बिजली पूरब दौड़ें, पश्चिम को पुरवैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

[८]

मिट्टी में तो फूल खिलें, उनकी मुस्कान सुबह वाली,
इन मुस्कानों में मुस्काये, घुलमिल मतवाला माली,
जनम-जनम मिल-जुल कर नाचें, रचना और रचैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

[९]

जिसकी गुड़ियाँ चुनरी बदलें, छुपा वही संसार में,
देश हुआ परदेश पिया बिन, गाँव बसा मँझधार में,
दोनों तटपर अपनी बगिया, अंगना ताल-तलैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

[१०]

दीप जला कर रात गुजारी, देह जलाकर दोपहरी,
हृदय जला कर सपने देखे, नींद लगी गहरी-गहरी,
होती भोर, सभी चल देते, रहता एक नचैया रे,
लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे!

—:०:—

श्यामनारायण पाण्डेय

(२०)

हल्दी घाटी

सावन का हरित प्रभाव रहा; अम्बर पर थी घनघोर घटा।
फहरा कर पंख थिरकते थे, मन हरती थी बन-मोर छटा॥
पड़ रही फुही झींसी झिन-झिन, पर्वत की हरी बनाली पर।
'पी कहाँ' पपीहा बोल रहा, तरु-तरु की डाली डाली पर॥
वारिद के उर में चमक दमक, तड़-तड़ थी बिजली तड़क रही।
रह रह कर जल था बरस रहा, रणधीर भुज थी फड़क रही॥
था मेघ बरसता झिमिर झिमिर, तटिनी की भरी जवानी थी।
बढ़ चली तरंगों की असि ले, चण्डी सी वह मस्तानी थी॥
वह घटा चाहती थी जल से, सरिता-सागर निर्झर भरना।
यह घटा चाहती शोणित से, पर्वत का कण-कण तर करना॥
धरती की प्यास बुझाने को, वह घहर रही घन-सेना।
लोहू पीने के लिए खड़ी यह, हहर रही थी जन-सेना॥
नभ पर चम चम चपला चमकी, चम चम चमकी तलवार इधर
भैरव अमन्द घन-नाद इधर, दोनों दल की ललकार उधर॥
वह कड़-कड़-कड़-कड़ कड़क उठी, यह भीम नाद से भड़क उठी।
भीषम संगर की आग प्रबल, बैरी सेना हैं भड़क उठी॥
डग-डग, डग-डग रण के डंके, मारू के साथ भयद बाजे।
टप-टप-टप घोड़े कूद पड़े, कट-कट मतंग के रद बाजे॥
कल-कल कर उठी मुग़ल सेना, किलकार उठी, ललकार उठी।

असि म्यान-विवर से निकल तुरत,
अहि-नागिन सी फुफकार उठी ।।

शर-दण्ड चले, को दण्ड चले, कर की कटारियाँ तरज उठीं ।
खूनी बरछे-भाले चमके, पर्वत पर तोपें गरज उठीं ।।
फर-फर-फर-फर फहर उठा, अकबर का अभिमानी निशान ।
चढ़ चला कटक लेकर अपार, मद मत्त द्विरद पर मस्त मान ।।
कोलाहल पर कोलाहल सुन, शस्त्रों की सुन झनकार प्रबल ।
मेवाड़-केसरी गरज उठा, सुनकर अरि की ललकार प्रबल ।।
हर एक लिंग को माथ नवा, लोहा लेने चल पड़ा वीर ।
चेतक का चंचल वेग देख, था महा-महा लज्जित समीर ।।
लड़-लड़ कर अखिल महीतल को, शोणित से भर देने वाली ।
तलवार वीर की तड़प उठी, अरि-कण्ठ कतर देने वाली ।।
राणा का ओज भरा आनन, सूरज समान चमचमा उठा ।
बन महाकाल का महाकाल, भीषण भाला दमदमा उठा ।।
भेरी प्रताप की बजी तुरत, बज चले दमामे धमर-धमर ।
धम-धम रण के बाजे काजे, बज चले नगारे घमर-घमर ।।
जय रुद्र बोलते रुद्र-सदृश, शिवरों से निकले राजपूत ।
झट झण्डे के नीचे आकर, 'जय प्रलयंकर' बोले सपूत ।।
अपने पैने हथियार लिये, पैनी पैनो तलवार लिये ।
आये खर-कुन्त-कटार लिये, जननी-सेवा का भार लिये ।।
कुछ घोड़े पर, कुछ हाथी पर, कुछ योधा पैदल ही आये ।
कुछ ले बरछे, कुछ ले भाले, कुछ शर से तरकस भर लाये ।
रण यात्रा करते ही बोले, राणा की जय, राणा की जय ।।
मेवाड़-सिपाही बोल उठे, शत बार महाराणा की जय ।।
हल्दी घाटी के रण की जय, राणा प्रताप के प्रण की जय ।
जय जय भारत माता की जय, मेवाड़-देश कण-कण की जय ।।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद

(२१)

मानव

मैंने मानव को प्यार किया।
मानवता के आराधन से
पावन उर का संसार किया।
मैंने मानव को प्यार किया॥
हिमगिरि से उन्नत है मानव,
सागर से गहन-गंभीर कभी।
रज-कण से क्षुद्र कभी बनता,
मारुत से अधिक अधीर कभी॥
इस लघुता और उच्चता ने
मानव का है शृंगार किया।
मैंने मानव को प्यार किया॥
मैं पुष्पों का अनुरागी हूँ,
है इन्द्र-धनुष से स्नेह मुझे।
पर, ये मानव-उर से सुन्दर
हैं, इनमें चिर-संदेह मुझे॥
मेरे प्राणों पर मानव ने
अक्षय अनन्य अधिकार किया।
मैंने मानव को प्यार किया॥

तम से प्रकाश की महिमा है,
उत्थान पतन से खिलता है।
दुर्बलता से बल को जग में,
बल होने का यश मिलता है॥
इससे मानव-दुर्बलता का
गौरव मैंने स्वीकार किया।
मैंने मानव को प्यार किया॥

हैं चक्रवाक, चातक, चकोर,
विख्यात व्यथा इनके मन की।
पर मानव-धन की गहन व्यथा
चिर-परिचित मेरे जीवन की॥
मानव सुख-दुःख ही ने मेरे
गीतों में रस-संचार किया।
मैंने मानव को प्यार किया॥

———

बकार अम्बालवी

(२२)

जीवन

यह जीवन एक कहानी है, कुछ कहता जा, कुछ सुनता जा !
इसका अन्त औ' आद नहीं है, पूरी किसी को याद नहीं है ।
आंसू औ' मुसकान कहानी, कहते हैं सब अपनी बानी ।
एक कहानी पाप औ' पुन्न हँस कर कह, या रो कर सुन ॥
यह जीवन एक कहानी है, कुछ कहता जा, कुछ सुनता जा !

————

हफ़ीज़ जालन्धरी

(२३)

अपने मन में प्रीत बसा ले, !
अपने मन में प्रीत बसा ले,
अपने मन में प्रीत !!

मन-मन्दिर में प्रीत बसा ले, ओ मूरख, ओ भोले-भाले !
दिल की दुनिया करले रौशन, अपने घर में जोत जगा ले !
प्रीत है तेरी रीत पुरानी, भूल गया ओ भारत वाले !
भूल गया ओ भारत वाले,
प्रीत है तेरी रीत !
बसा ले, अपने मन में प्रीत !

क्रोध-कपट का उतरा डेरा, छाया चारों खूंट अन्धेरा,
शेख बरहमन दोनों रहज़न, एक से बढ़ कर एक लुटेरा,
ज़ाहरदारों की संगत में, कोई नहीं है संगी तेरा,
कोई नहीं है संगी तेरा,
मन है तेरा मीत !
बसा ले, अपने मन में प्रीत !

भारत माता है दुखियारी, दुखियारे हैं सब नर-नारी,
तू ही उठा ले सुन्दर मुरली, तू ही बन जा श्याम मुरारी,
तू जागे तो दुनिया जागे, जाग उठें सब प्रेम-पुजारी,
जाग उठें सब प्रेम-पुजारी,
गाएं तेरे गीत !
बसा ले, अपने मन में प्रीत !

(२४)

फिर क्या तेरा मेरा रे !

तेरे दर की धूल में जाने क्या पाया है भिखारी ने ?
  दुनिया छूटी पर नहीं छूटा तेरी गली का फेरा रे
प्रीत बुरी है, या अच्छी है, जो कुछ भी है मेरी है,
  अब तो प्यारे आन बसाया मन में प्रेम ने डेरा रे !
मेरे दिल की दुनिया प्यारे, तेरे दिल की दुनिया है,
  तू मेरा है, मैं तेरा हूँ, फिर क्या तेरा मेरा रे ?
प्रेम के बन्धन में फंसने से कितने बंधन टूटे हैं ?
  यह मैं जानूं, या वह जाने, जिसको प्रेम ने घेरा रे !
जब तुम सपने में भी न आओ, प्यारे फिर क्यों नींद आए ?
  विरह का दीपक जब नहीं बुझता, फिर कैसे हो सवेरा रे ?

———

मौ० ताजवर

(२५)

आओ सहेली झूला झूलें

पुरवा सनकी, बादल छाए, भूरे काले घिर कर आए,
अमृत जल भर-भर के लाए, बरख रुत की इस बरखा में,
आओ सहेली०

उठती हैं पुरशोर घटाएं, काली-काली चोर घटाएं,
सावन की घनघोर घटाएं, साबन की मुंहज़ोर घटाएं।
आओ सहेली०

बरखा रुत की शान निराली, पत्ते-पत्ते पर हरियाली,
डाली-डाली है मतवाली, इस रुत की मख़मूर फ़िज़ा में
आओ सहेली०

झूलें औ' पकवान बनाएं; आमों की नौ-रोज़ मनाएं,
खाते जाएं, गाते जाएं, झड़ी लगी है, इस बरखा में।
आओ सहेली०

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

(२६)

सौंदर्य खो गया है !

संसार लग रहा है पतझार की गली-सा,
विच्छिन्न तरु-लता के शृंगार की गली-सा,
रौंदा जिसे नियति ने उस प्यार की गली-सा,
पीड़ा-भरी जलन के त्यौहार की गली-सा,
लूटी हुई सुहागिन झंकार की गली-सा,
विष-पूर्ण काल अहि के फुंकार की गली-सा,

दिन की चिता जला कर—
दिनमान सो गया है !
सौन्दर्य खो गया है !

यह रात रेंगती-सी छाया समय-विकिर की,
आकृति कलंकिनी या पापी कुटिल तिमिर की,
अथवा विभीषिका है विध्वंस के अजिर की,
या ग्लानि है समर से भागे हुए मिहिर की ?
या राख प्रार्थना के जलते हुए शिविर की,
सुषमा जहां बसी थी मधुऋतु सरद्-शिशिर की ?

अभिशाप लील विधु को
विष-बीज बो गया है।
सौन्दर्य खो गया है !

कुछ पूछतीं लताएं गर्जन भरे पवन से,
कुछ पूछतीं दिशाएं उड़ते हुए धुवन से,
कुछ पूछतीं व्यथाएं विस्मित चकित नयन से,
कुछ पूछतीं पुतलियाँ बज्राभ आवरण से,
कुछ पूछतीं धरित्री तपते हुए गगन से,
कुछ पूछती प्रतीक्षा अपने अधीर मन से,

मन पूछता स्वयं से—
क्या आज हो गया है?
सौन्दर्य खो गया है!

आलोक का पुजारी आलोक में पला जो,
आलोक का सनेही, आलोक में ढला जो,
आलोक की ध्वजा ले आलोक-पथ चला जो,
आलोक के शिखर पर आलोक-सा जला जो,
आलोक के स्वरों में आलोक की कला जो,
ग्रह बार-बार पिघले, अब तक न पर गला जो,

देहात्म के नगर से—
लौटा न जो गया है।
सौन्दर्य खो गया है।

————

नागार्जुन

(२७)

बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुस्कान
—बहुत दिनों के बाद !

अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की
कोकिल कण्ठी तान
—बहुत दिनों के बाद !

अब की मैंने सूंघे जी भर
मौलसरी के ढेर-ढेर से
टटके ताज़े फूल
—बहुत दिनों के बाद !

अब की मैं जी-भर छू पाया
अपनी गंवई पगडण्डी की
चन्दनवर्णी धूल
—बहुत दिनों के बाद !

अब की मैंने ताल मखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
—बहुत दिनों के बाद !

अब की मैंने जी भर भोगे
गन्ध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब
साथ-साथ इस भूपर
—बहुत दिनों के बाद !

———

मुकुट बिहारी

(२८)

गीतकार से

जो न समय की दर्दीली साँसों का मीत बने,
गीतकार, ऐसे गीतों को धरती कभी न गायेगी।
अभी हुई है भोर, अमावस ने सिंहासन छोड़ा है,
अभी-अभी सम्बन्ध धरा ने नभ के तन से जोड़ा है,
अभी, सुबह का दिया, पसीना पोंछ रहा है माथे से,
अभी-अभी सपनों निंदिया की कारा को तोड़ा है,
अभी उजाला पहुँचा ही है कुटियों के दरवाज़ों तक,
तुम यदि सोते रहे, लेखनी जीते-जी मर जायेगी।
अभी डाल ने कलियों को हँसने की कला सिखाई है,
अभी, फूल की मधुऋतु के संग होना शेष सगाई है,
अभी चमन की आंख ओस से नभ है, बिल्कुल भीगी है,
अभी गंध के पास पवन ने पाती नहीं पठाई है,
अभी नीड़ के निर्माणों का रथ दो पाव न चल पाया,
तुम यदि बैठे रहे कोयलिया कैसे मन समझाएगी ?
अभा मेरा दुर्भाग्य, कि मैं कवि हूँ जलते अङ्गारों का;
लेकिन बुझने तक गाऊँगा गीत नए शृंङ्गारों का,
मुझे तुम्हारी नहीं फिकर, आने वाली पीढ़ी की है,
जिसे खून से तर्पण करना पड़े न कहीं बहारों का,
मन्दिर से मत दूर आरती के गीतों को ले जाओ,
कोटि-कोटि जनता ऐसे पागलपन पर पछताएगी॥

रामावतार त्यागी

(२६)

मत बुझाओ

इस सदन में मैं अकेला ही दिया हूँ, मत बुझाओ—
जब मिलेगी रोशनी मुझ से मिलेगी।
पांव तो मेरे थकन ने छील डाले,
अब विचारों के सहारे चल रहा हूँ।
आँसुओं से जन्म दे देकर हँसी को,
एक मन्दिर के दिए-सा जल रहा हूँ।
मैं जहाँ धर दूँ कदम, वह राज-पथ है, मत मिटाओ—
पाँव मेरे देखकर दुनिया चलेगी।
जी रहे हो जिस कला का नाम लेकर,
कुछ पता भी है कि वह कैसे बची है ?
सभ्यता की जिस अटारी पर खड़े हो,
वह हमीं बदनाम लोगों ने रची है,
मैं बहारों का अकेला वंशधर हूँ, मत सुखाओ—
मैं लिखूँगा तब नई बगिया खिलेगी।
बेबसी मेरे अधर इतने न खोले,
जो कि अपना मोल बतलाता फिरूँ मैं,

इस कदर नफरत न बरसाओ नयन से,
प्यार को हर गाँव दफनाता फिरूँ मैं,
एक अङ्गारा गरम मैं ही बचा हूँ, मत बुझाओ—
जब जलेगी आरती मुझ से जलेगी।
शाम ने सबके मुखों पर रात मल दी,
मैं जला हूँ तो सुबह लाकर बुझूँगा,
ज़िन्दगी सारी अन्धेरे में बिताकर,
जब मरूँगा, देवता बनकर पूजूँगा,
आँसुओं को देखकर मेरी हँसी तुम मत उड़ाओ—
मैं न रोऊँ तो शिला कैसे गलेगी?

———

श्री हरि

(३०)

द्रोणाचार्य

हम द्रोणाचार्य हैं—
रहते हैं कौरव के रौरव में,
भूले हैं मिथ्या के गौरव में,
दुर्योधन के मन की कहते हैं !
दुःशासन जो कुछ भी करता है,
हम देखा करते हैं,
राज्याश्रय के पीछे मरते हैं,
आत्मा की सारी पुकारों का तीखापन
चुप रह कर सहते हैं।
आश्रयदाताओं की सेवा में तत्पर हम
धर्मधनुर्धारी उस अर्जुन से डरते हैं,
भीम गदाधारी से बचते हैं,
किन्तु जहाँ अवसर मिल जाता, हम सात-सा
चक्रव्यूह रचते हैं—
एक साथ एकाकी बालक अभिमन्यु को
घेर कर मारते हैं
और अन्नदाता का ऋण यों उतारते हैं।
फिर भी हमें पूजे चले जाते हैं पांडु-पुत्र,

सबके शिरोधार्य हैं।
हम द्रोणाचार्य हैं ॥
अश्वत्थामा हतो, कह कर भी आज तुम मार सकते न हमें,
कुंजर-नर का अन्तर हमको मालूम है—
नर का दस लाख गुना प्यारा हमको कुंजर,
राजा का कुंजर ही !
एकलव्य जैसों को पंगु किया करते हम,
राजा के पुत्रों की महिमा बढ़ाने के
ऐसे सौ कार्य हैं !
हम द्रोणाचार्य हैं ॥
हमको इतिहास दुहराता चला जायेगा,
हर युग में राज्याश्रय हमको ही पायेगा,
हम उसको पायेंगे,
हम उसका खायेंगे,
उसका ही गायेंगे,
कोटि-कोटि अभिमन्यु और कोटि-कोटि एकलव्य छले जायेंगे
युग-युग में जन्म-जन्म, राजधानियों की राह
चलते चले जायेंगे—
सारी प्रवंचनाएँ हमको स्वीकार्य हैं।
हम द्रोणाचाय हैं !!

—:o:—

कठिन शब्दों के अर्थ

१. हुएनसांग की भारत यात्रा

रत्न त्रयी=जैनमत के तीन मूल सिद्धान्त। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र। संघाराम=बौद्ध विहार (मठ)। महायान=बौद्ध धर्म का एक प्रमुख सम्प्रदाय। स्तूप=ऊँचा टीला जिसके नीचे बौद्ध धर्म सम्बन्धी कोई वस्तु सुरक्षित की गई हो।

धराशायी—भूमि पर गिरे हुए। विष्ठा—पक्षियों की गन्दगी।

बोधिसत्व—बुद्ध बनने के लिये प्रयत्नशील जीव दशा।

सौतांत्रिक—बौद्धों का एक मत-विशेष। बीहड़—भयानक।

दस्यु—डाकू। तस्कर—चोर।

बोधिवृक्ष—गया नगर का वह वट वृक्ष जिसके नीचे बैठ कर गौतम ने तपस्या की थी। ध्येय—लक्ष्य। तथागत—बुद्ध भगवान्। सन्नद्ध—तैयार।

गन्तव्य—जाने योग्य, अर्थात् जहाँ उसे जाना था। सिंहल—लंका। भड़ौंच—कच्छ (गुजरात प्रान्त का एक स्थान)

घनिष्ठ—पक्का, मैत्रीपूर्ण।

———

२. उसने कहा था

ग्लानि—अनुत्साह, खेद। क्षोभ—रंज, परेशानी। लढ़ी—बैलगाड़ी, आदमी द्वारा खींचे गए ठेले। बाश्शा—बादशाह का संक्षिप्त पंजाबी उच्चारण। फेंटों—पगड़ियों या तहमदों।

समष्टि में—कुल मिलाकर। गुंथ रहा—उलझ रहा, झगड़ रहा।

वैष्णवी—छूतछात मानने वाली भक्तिन हिन्दू नारी।

गनीम—शत्रु। गैवी—चोरी से आने वाले। नगरकोट—कांगड़ा। देहली—दहलीज़। कमान—(Command) आदेश।

इड़का—पागल।

क्षयी—क्षीण होने वाला; तपेदिक का रोगी। दन्तवीणोपदेशाचार्य—दाँतों की वीणा सिखाने में उस्ताद, अर्थात् दाँत बजाने वाली।

ओबरी—कोठरी।

---

३. रूस की चिट्ठी

मन का चेहरा—मनोदशा।

वीथिका—गली, मार्ग। कृषि-जीवी—खेती-बाड़ी करके निर्वाह करने वाले।

सर्वतोभाव—हर तरह से, पूर्ण रूप से।

जिज्ञासु-भाव—नई बात जानने की उत्सुकता। निश्चेष्ट—जड़, मन्द। निरुपाय—असहाय।

व्रती—किसी बात का व्रत (निश्चय) लेकर चलने वाला ; वृत्ति—व्यवहार, काम (Profession)। पर-श्रम-जीवी—(बुर्जुआ) दूसरों की मिहनत पर जीने वाले।

शासन-तन्त्र–राज्य, हकूमत। अनुशीलन-सोच-विचार। लोक-यात्रा—सांसारिक जीवन । स्वायत्त-शासन—लोगों के द्वारा चलाये जाने वाला शासन। दायित्व-बोध – ज़िम्मेदारी का ज्ञान।

कदाचार—बुरी आदतें, बुरे रिवाज। पाकशाला—रसोई। पथ्य—भोजन, खान-पान। उपलब्धियों—सफलताओं (Achievements)।

दोषारोप—दोष लगाना।

नवोत्थान—नई उन्नति। जटिल – पेचीदा।

यन्त्र वाहिनी—यन्त्रों की स्थापना में लगा कर। सजीव संवाद-पत्र—जब बालक स्वयं नृत्य, गीत, नाटक तथा वार्तालाप आदि के द्वारा ज्ञातव्य बातों को दर्शकों के सामने रखते हैं तो इसे ही सजीव संवाद-पत्र कहते हैं।

चित्रांकन—चित्र बनाना। 'ऑपेरा'—(Opera) नृत्य तथा संगीत पर आधारित नाटक। अहोरात्र—दिन-रात। परित्राण – रक्षा। अवज्ञा—अनादर। 'रिसरैक्शन'—(Resurrection) मुर्दे का जी उठना। सहज—आसानी से। उपभोग्य—मज़ा देने वाला, समझ में आने वाला। ऐंग्लो-सैक्सन—(Anglo-saxon) अंग्रेज़-जर्मन जाति के।

वायु चल-चक्र-यन्त्र—Wind-Mill।

लग्घी से नाव ठेलना—अनुपयुक्त साधनों से कोई काम करना।

———

४. मनुष्यता का दण्ड

समवयस्क—एक ही उम्र के। अस्तासन्न—डूबने को तैयार।

'शेड'—Shed (छती हुई जगह)।

कल्पित—मन में सोचा हुआ।

आपद् ग्रस्त—विपत्ति में पड़ा हुआ।

———

५. रानी दुर्गावती

पताका—झण्डा। माण्डलिक—एक प्रान्त पर शासन करने वाली, कर देने वाली। अवहेलना—तिरस्कार। अधीश्वरी—स्वामिनी। अंकलक्ष्मी—धर्मपत्नी।

विदित था—मालूम था। मार्जार-दृष्टि—बिल्ली की (स्वार्थी) नज़र।

तत्परता—तैयार रहना। वत्सलता—प्यार।

दुर्दमनीय—किसी से न दबाए जाने वाला।

आत्म-समर्पण—अपने आप को सौंप देना। बद्ध-परिकर—कमर कस कर तैयार। मुण्डमालिनी—मुण्डों की माला पहनने वाली। चामुण्डा—देवी भैरवी! तुरगारूढ़—तुरग (घोड़े) पर आरूढ़ (चढ़ी हुई)। दुःसह—जो सहा न जा सके। विपक्षी—शत्रु।

तेजोवह्नि—प्रताप-रूपी अग्नि। कलंक-कालिमा—बदनामी की स्याही। प्रक्षालन—धोना। कूट-नीति—छल-कपट। गृह-विवाद—घरेलू झगड़ा। सम्मत—राजी।

लोम-हर्षण—रोंगटे खड़े कर देने वाला।

अनुपम—अद्वितीय, बेमिसाल। कोमल-कलेवरा—कोमल शरीर वाली।

———

६ सृष्टि की उत्पत्ति

वाष्प-खण्ड—भाप के बादल।

अन्यान्य—दूसरे।

नभचर—आकाश में उड़ने वाले। वनस्पतियों—वृक्षों, बेलों आदि।

अपेक्षाकृत—पहले के मुकाबले में।

घनत्व—जमाव, घनापन। तरल—पिघली हुई। केतु-नाभि-अन्दर का मध्य भाग।

ह्रास—कमी। अल्पजीवी—थोड़ी देर जीने वाला।

———

७. एटम बम

चेतना—होश। जर्जर—चूर-चूर हुआ। स्फूर्ति—चेतना।

अस्तित्व—जीवन-सत्ता। कुहासे—धुन्ध। चिनगियाँ—चिंगारियाँ। हीनावस्था—हारी हुई मनोदशा। पराकाष्ठा—हद। नेस्त-नाबूद—नष्ट।

अनास्था—अविश्वास। सोते—स्रोते, झरने।

जूड़ी बुखार—मलेरिया।

विचलित—व्याकुल। हलक़—गला। घनिष्ठ—घुले-मिले। 'स्क्रीन'—(Screen) पर्दा। नुमायां—प्रकट।

सबसे बड़ा मुन्सिफ—ईश्वर।

बगूला—धूल का तूफान। नम—गीली। ज़ोम—विश्वास। सहाला—सम्हाला।

पुरुषार्थ—हिम्मत।

राहत—आराम, शान्ति। महायन्त्रणा—घनी पीड़ा। बेवा—विधवा।

उत्तेजना—बेचैनी।
सदादर्शों—अच्छे आदर्शों।
विनाश-लोलुप—विनाश चाहने वाली।

———

८. भिखारी ज़िमींदार

उल्टी साँस चलना—मृत्यु के पास होना। अन्तर्वेदना—मन की वेदना।

दीनदार—धार्मिक। अवहेलना—तिरस्कार।
नामूसी—निराशा। युक्ति—दलील, तर्क।
मुरौवत—भाईचारा।
तस्कीन—शान्ति।
वितंडायों—उपद्रवों, शरारतों।
परती—बञ्जर, बिना जुती। उठाऊँ—बेचूँ।
पुरस्कार—ईनाम। गुणानुवाद—गुणों का बखान
परवरिस—परवरिश, पालना।
धरोहर—अमानत
कुंजडे—सब्ज़ी-तरकारी बोने-बेचने वाले (राईं)।
खटिक—तरकारी बेचने वाले (सब्ज़ी फरोश)।
हियाब—साहस। कसबियाँ—वेश्यायें।

———

९. पर्वतारोहण

पर्वत-माला—पहाड़ों का सिलसिला। निर्धारित—निश्चित
निस्तब्ध—चुप, मौन, जड़।

सांस्कृतिक—संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाली। (भारतीय संस्कृति में हिमालय का बड़ा गौरव-मय स्थान है।)

अतिशयोक्ति—बढ़ा-चढ़ा कर बात कहना।

———

१०. हार की जीत

छवि—रूप, मूर्ति (Portrait)।

———

११. मेरी दैनिकी

कल्पतरु—एक काल्पनिक दैवी वृक्ष, जो मनचाही वस्तुएँ देता है। विश्वामित्री—विश्वामित्र ने भी एक बार नई सृष्टि रचने का प्रयास किया था। नैयायिक—न्याय दर्शन मानने वाले (अनुमान—जहाँ धुआँ होगा वहाँ आग होगी यत्र धूमस्तत्राग्निः)।

पारिवारिक—परिवार सम्बन्धी। ग्रहत्यागी—कल्पना के आकाश से नीचे उतरने वाले।

समन्वय—तालमेल। टेस्ट ट्यूब बेबी—(Test Tube Baby) विज्ञान के प्रयोग से उत्पन्न शिशु।

निष्पारिवारिकता—परिवार का न होना।

मनोरथशील—इच्छुक।

पुंगीफल—सुपारी के टुकड़े। छछिया-भर—'रसखान' के एक सवैये की ओर निर्देश है। भूँझल—भूँझलाहट।

असंगति—एक अलंकार—जब 'कारण' एक स्थान पर हो लेकिन 'कार्य' दूसरे स्थान पर।

प्रसाद—हिन्दी के प्रसिद्ध नाटक-कार स्व० जयशंकर प्रसाद।

साधारणीकरण—'रस' का श्रोताओं-दर्शकों पर एक जैसा प्रभाव पड़ना।

अभिव्यञ्जनावाद—(Expressionism) किसी बात को चमत्कारपूर्ण ढंग से कहना।

पलायनवादी—(Escapist)—जीवन के संघर्ष में पीठ दिखाने वाला।

कला का अनुसरण—'कला कला के लिए' कहकर।

लढी—बैलगाड़ी। पड़िया—भैंस की मादा बच्ची (कट्टी)

सुरसा—एक राक्षसी जिससे सीता की खोज में जाने वाले हनुमान की सागर में भेंट हुई थी।

———

१२. काम-काज

आहत—घायल।

अश्रुतपूर्व—जिसे पहले न सुना हो।

———

१३. गांधी जी का व्यक्तित्व

संजीवनी—जीवन देने वाली।

उदात्त—ऊँचा। पर-दुःख-कातरता—पराए दुःख में दुःखी होना। संयम-जनित—संयम से उत्पन्न। प्रखर—तीव्र। प्रतीक—प्रतिनिधि (Symbol)। हिन्दी—हिन्द की।

आधारभूत—बुनियादी।

अखण्ड—अटूट।

असहयोग—विदेशी माल का बहिष्कार करने का देश-व्यापी आन्दोलन।

मोहाविष्ट—मोहित, वशीभूत। नैतिक शक्ति—चरित्र-बल। सुघराई—ठीक ढंग से काम करना। परिभाषा—लक्षण।

पुनीत—पवित्र। पल्लवित हुई—फली-फूली। संतप्त—दुःखी।

———

१४. व्हाइट के हिज्जे

आयास—मानसिक कष्ट। विक्षिप्त—पागल। अन्यमनस्क-किसी बात में खोया हुआ। उद्देश्य-हीन—बे-मतलब।

प्रसव—शिशु-जन्म। संठोल—डोगरी में इसे 'सुण्ड' कहते हैं।

क्रूर—निर्दय, बेरहम। अपरिपक्व—नन्हे, कोमल, न पके हुए। निर्दिष्ट—पहचानना (To locate)।

मेधा—स्मरण-शक्ति। सोल्लास—प्रसन्नतापूर्वक।

अनायास—अपने आप। अहम्—(Ego) अहंकार।

उद्भ्रान्त—पागल, उन्मत्त, विक्षिप्त। विश्लेषण—अलग-अलग करना (Analyse)।

अश्लील—गन्दी।

धुन्धली गुफाओं—धुन्धली यादों।

प्रतिहिंसा—बदला लेने की भावना।

———

१५. मृत्युञ्जय

विवेकानन्द—स्वामी विवेकानन्द, बंगाली दार्शनिक, रामकृष्ण परमहंस का लोक-प्रसिद्ध शिष्य।

जीव—जीवात्मा।

परीक्षित—महाभारत कालीन राजा परीक्षित (अभिमन्यु का बेटा)।

स्थितप्रज्ञ—जिसकी इन्द्रियाँ वश में हों; जिसके मन, बुद्धि स्थिर हों।

नारायणास्त्र—ब्रह्म-अस्त्र जो कभी निष्फल नहीं जाता।

तवारीख—इतिहास। बहिश्त—स्वर्ग।

निष्ठा—विश्वास। इरविन—वायसराय इरविन।

प्रकृति—स्वभाव, धर्म। विकृति—बिगड़ा हुआ रूप। आचरण—काम, व्यवहार।

सचेत—सावधान।

जीव का कारागार—देह, शरीर। मनस्वी—विद्वान।

बाधक—रुकावट।

———

...धा हो, वह अपने बछड़े के
पद्य-वाटिका के पीछे दौड़ीं। (४०)

[कठिन शब्द-अर्थ]

...या को कई
...तथा

१. फूल और काँटा

मेंह—वर्षा। देता कलि जी की खिला—प्रसन्न कर देता।

२. काँटा और फूल

पुलकित किया—प्रसन्न किया; घटि—घाटा, कमी; समाँ रहा—शोभा बनी रही; खिजलाना—खीज से भर जाना।

३. ध्वज-वंदना

मानस-लहरी—मन की भावनाएँ; कल—सुन्दर; त्रियोग—तीन वस्तुओं या भावों का मिलन; घहरे—गूञ्जे; तुष्टी करण—खुश करना; नरता—मनुष्यता, बर्बरता-पशुता; जूझे—बलि हुए।

४. अन्वेषण

उत्थान भर रहा था—उठ रहा था; कोहकन—पर्वत काटने वाले।

फरहाद—ईरान का एक प्रेमी तरुण जिसने अपनी प्रियतमा को पाने के लिए पर्वत काट कर नहर निकाली थी।

महमूद का रुदन—लुटेरा महमूद गजनवी अन्त में अपने कामों पर पछताया था, उसे भी मोह वेदना का अनुभव हुआ था।

स्थितप्रज्ञ—जिसकी इन्द्रियाँ वश ... शरीर वाला।
बुद्धि स्थिर हों।

नारायणास्त्र- ... दुःख-सुख

तवारीख ...र ; निशा दिवा—रात दिन।

६. उठो

नि...

-हर्ष, प्रसन्नता का समय ; उच्छ्...व --शोक,

७. क्या पूजा क्या अर्चन रे !

अभिनन्दन—स्वागत ; अक्षत—चावल ; दृग—नयन
उत्पल—नीला कमल ; ...लन—खिलना, विकास।

८. अनन्त की ओर

जर्जर—पुरानी, टूटी-फूटी ; तरणी—नाव ; निर्मम—
निर्दय।

९. एक बार

लेते पखार—धो लेते ; आर्द्र—गीले ; विराग—उदासी ।

१०. स्वस्ति पाठ

शस्य—फसलें ; स्वर्णिम—सुनहरी ; शतदल—कमल ;
...त—से दूर ; समर-प्रमाद—युद्ध का पागलपन।

११. शान्ति

क्षुधित—भूखे ; गरल—विष ; सम्यक्--उचित ; पद्धति--
...र्ग ; अनय—अन्याय ; द्वन्द्व—संघर्ष ; शर बेधक—तीर की
...ह चुभने वाले ; दायी—उत्तरदायी ; जगद् दहन—संसार को
जलाने वाली (युद्ध की) आग ; शिखा—लपट ; न्यास--नींव ;
-अधिकार।